'सत्यं वद् ! ॐ तत्सत् धर्मं चर !!'

'श्रम एव जयते' "भगवत् कृपा हि केवलम्-Only the Mercy of GOD-" सत्यमेव विजयते'

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !) - No Salvation Without KNOWLEDGE

परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर जी के तत्त्व विवेचना पर

गृहस्थ जीवन

ॐ-सोऽहँ-हँसो-शिव-ज्योति भी भगवान् नहीं, भगवान् 'परमतत्त्वम्' है ।

स्वाध्याय, अध्यात्म ही ज्ञान नहीं, ज्ञान 'तत्त्वज्ञान' है ।

कण--कण में भगवान्--यह घोर है अज्ञान । सबमें है भगवान्--मूर्खतापूर्ण है यह ज्ञान । कण--कण में शक्ति, शरीरों में जीवात्मा, आकाश में है आत्मा और परमआकाश रूप परमधाम में सदा रहते हैं परमात्मा, सिवाय अवतार बेला में एकमेव एक अवतारी शरीर मात्र के ।

कलियुगीन एकमेव एक पूर्णावतार

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम्-गॉड-अलम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् के चतुर्युगीन पूर्णावतार

मुझ परमात्मा-परमेश्वर के परम भावको न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ सम्पूर्ण भूतों के महान् ईश्वर अर्थात् परमेश्वर को तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपने योग माया से संसार के उद्धार के लिये मनुष्य रूप में विचरते हुए मुझ परमात्मा परमेश्वर को साधारण मनुष्य मानते हैं ।

।।श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ९/११।।

'सत्यं वद्! ॐ तत्सत् धर्मं चर!!'
'श्रम एव जयते! 'भगवत् कृपा हि केवलम्' - Only the Mercy of GOD - ... सत्यमेव विजयते!!'
ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !) - No Salvation Without KNOWLEDGE

असत्य नहीं, सत्य की ओर चलें (कर्म का अभीष्ट) !
मोह-अन्धकार नहीं, दिव्य-ज्योति की ओर चलें (योग या अध्यात्म का अभीष्ट) !!
मृत्यु नहीं, अमरता की ओर चलें (ज्ञान का अभीष्ट) !!!

प्रार्थना

मंगलमय कामना करूँ आत्मतत्त्वम् प्रभु आप से ।
मुक्ति अमरता सद्बुद्धि दो सदा बचाओ पाप से ।।

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थिति संयमात्मशक्तिम् ।
द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण १२/१२/६६)

"वे जन्म-मृत्यु आदि विकारों से रहित, देशकालादिकृत् परिच्छेदों से मुक्त एवं स्वयं 'आत्मतत्त्वम् (भगवत्तत्त्वम्)' ही हैं । जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करने वाली शक्तियाँ भी उनकी स्वरूपभूत ही हैं, भिन्न नहीं । ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर आदि लोकपाल भी उनकी स्तुति करना लेशमात्र भी नहीं जानते । उन्हीं एकरस सच्चिदानन्दघन रूप परमात्मा परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ।"

उसी सच्चिदानन्द रूप परमतत्त्वम् रूप "आत्मतत्त्वम्" शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् का गीता (११/११-१२-१३) वाले ही विराट पुरुष सहित बात-चीत सहित साक्षात् दर्शन-परख-पहचान प्राप्त कराने वाले—

तत्त्ववेत्ता परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर
स्वामी सदानन्द जी परमहंस

ग्रन्थ का नाम : गृहस्थ जीवन

विरचित : सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

प्रकाशक : ठाकुर राम सहाय सिंह जी (प्रधान सचिव)
'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्'
पुरुषोत्तम धाम आश्रम, पुरुषोत्तम नगर- सिद्धौर
बाराबंकी-२२५ ४१३ उ० प्र० (भारत)
दूरभाष : ०५२२-२३४६६१३

Internet: http://www.santgyaneshwarji.org
E-mail : bhagwadavatari@gmail.com

प्रथम आवृत्ति--१००० (मार्च २०१४)

मुद्रक : कमल जी

मुद्रणालय : 'ज्ञानेश्वर प्रेस,' तत्त्वज्ञानदाता धाम आश्रम, सी-१७,
न्यू आचार्य कृपलानी मार्ग, आदर्श नगर, दिल्ली-३३

मोबाइल : +91 9196001364, 9415584228

निरन्तर प्रकाशनार्थ सेवा शुल्क : रु० २०.००
(डाक खर्च अतिरिक्त)

'सत्यं वद्! ॐ तत्सत् धर्मं चर!!'

'श्रम एव जयते! 'भगवत् कृपा हि केवलम्' - Only the Mercy of GOD - سبحانه وتعالى 'सत्यमेव विजयते!!'

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः! (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं !) - No Salvation Without KNOWLEDGE

परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर जी के तत्त्व विवेचना पर

गृहस्थ जीवन

(पुष्पिका-२८)

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई, शरीर से उठकर देखो भाई ।
नूर-सोल और ज्योति भाव में, देते हैं सब एक दिखलाई ।।
इससे भी ऊपर उठकर देखो, खुदा-गॉड-परमेश्वर है ।
वही सभी का परमपिता और वही एक भुवनेश्वर है ।।
रूह-नूर और काल-अलम् ही, अहं-सः और परमतत्त्वं है।
सेल्फ-सोल एण्ड सुप्रीम गॉड ही, सन्त ज्ञानेश्वर का स्पष्ट मत है।
बहनों-बन्धुओं आगे आओ, आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड मिटाओ
धर्म-धर्मात्मा-धरती की रक्षा हेतु, अब सत्य-धर्म ही अपनाओ
विश्व विनाश के मुख में है, धरती वासी सब दुःख में हैं ।
विश्व विनाश से रक्षा हेतु 'हम' आप सभी के रुख में हैं ।।
देर करने में पछताना है, अपना अस्तित्त्व गँवाना है ।
जब सारा विश्व रहेगा ही नहीं, तो घर-परिवार क्या सजाना है ?
अगर अपना अस्तित्त्व बचाना होगा, और घर-परिवार भी सजाना होगा ।
तो विश्व विनाश की रक्षा हेतु, अब परम प्रभु के शरण में आना होगा ।।
सच 'एक है, 'एक' रहेगा, शेष सब बकवास है ।
सच 'एक' अवतरित हुआ है, बकवासों का अब नाश है ।

तत्त्ववेत्ता परमपूज्य

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

विषय - सूची

मुझ सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस का उद्देश्य

"मेरा उद्देश्य आप समस्त सत्यान्वेषी भगवद् जिज्ञासुजन को दोष रहित, सत्य प्रधान, उन्मुक्तता और अमरता से युक्त सर्वोत्तम जीवन विधान से जोड़ते-गुजारते हुये लोक एवं परलोक दोनों जीवन को भरा-पूरा सन्तोषप्रद खुशहाल बनाना और बनाये रखते हुये 'धर्म-धर्मात्मा-धरती' रक्षार्थ जिसके लिये साक्षात् परमप्रभु-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् अपना परमधाम (बिहिश्त-पैराडाइज) छोड़कर भू-मण्डल पर आते हैं, वर्तमान में भी आए हैं, में लगना-लगाना-लगाये रखना है । माध्यम और पूर्णतया मालिकान 'तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान' और खुदा-गॉड-भगवान् का ही होगा-रहेगा।" किसी को भी पूरे भू-मण्डल पर ही इस परम पुनीत भगवत् कार्य, जिसका माध्यम और मालिक भी साक्षात् 'खुदा-गॉड-भगवान्' ही हों, में जुड़ने-लगने-लगाने- लगाये रखने में जरा भी हिचक नहीं होनी चाहिये । खुशहाली और प्रसन्नता के साथ यथाशीघ्र लग-लगाकर ऐसे परमशुभ अवसर का परमलाभ लेने में क्यों न प्रतिस्पर्धात्मक रूप में अग्रसर हुआ जाय ? न कोई जादू, न कोई टोना-न कोई मन्त्र, न कोई तन्त्र । सब कुछ ही भगवत् कृपा रूप 'तत्त्वज्ञान' रूप सत्य ज्ञान के माध्यम से । वेद-उपनिषद्-रामायण-गीता-पुराण-बाइबिल-कुर्आन-गुरुग्रन्थ साहब आदि-आदि सद्ग्रन्थीय सत्प्रमाणों द्वारा समर्थित और स्वीकृत विधानों से ही कार्यक्रम चल-चला रहा है और चलता भी रहेगा । मनमाना कुछ भी नहीं । 'लोक लाभ परलोक निबाहू' और श्री राम जी वाला 'जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू ।।' को अपने जीवन में व्यवहारित बनाते हुये उसी प्रकार से वर्तमान में भी लाभान्वित होवें । इस परम शुभ अवसर का लाभ प्राप्त कर अपने को धन्य-धन्य बनाएं।

अन्ततः एक बार दोहरा दूँ कि मेरा उद्देश्य 'दोष रहित सत्य प्रधान मुक्ति-अमरता से युक्त सर्वोत्तम जीवन विधान वाला अमन-चैन वाला समृद्ध-सम्पन्न धर्म प्रधान समाज स्थापित करना-कराना है ।'

सन्त ज्ञानेश्वरजी का

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-इसाई-जैन-बौद्ध एवं तथाकथित सद्गुरुजन और शिष्यजन आदि-आदि सभी के लिये ही

परम कल्याण हेतु प्रेम भरा प्रस्ताव

समस्त वर्ग-सम्प्रदाय-पन्थ-ग्रन्थ के समस्त गुरुजन-सद्गुरुजन-तथाकथित भगवानों और अनुयायी-शिष्यगण से मुझ सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस का साग्रह अनुरोध है कि हम-आप सभी को ही इस दुनियावी-मायावी (धन-जन-आश्रम-मान सम्मान आदि आदि) प्रचार-प्रसार के मिथ्याभिमान-अहंकार से ऊपर उठकर ईमान और सच्चाई से दिल खोलकर प्रेम से एक साथ मिल बैठकर परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप शब्दरूप गॉड-अलम् (अमरपुरुष) को तत्त्वज्ञान रूप सत्यज्ञान रूप भगवद्ज्ञान (खुदाई-इल्म-नॉलेज) से पृथक्-पृथक् रूप में जीव (रूह-सेल्फ) एवं आत्मा-ईश्वर (ब्रह्म-नूर-सोल) दिव्य ज्योति-ज्योति विन्दुरूप शिव और परमात्मा-परमेश्वर (परमब्रह्म-खुदा-गॉड-भगवान्) को वेद-उपनिषद्-रामायण-गीता वाला विराट पुरुष, श्री विष्णु-राम-कृष्ण जी का भी, मूर्ति-फोटो वाला नहीं बल्कि वास्तविक (तात्त्विक) रूप में गरुण-लक्ष्मण-हनुमान-सेवरी-उद्धव-अर्जुन वाला ही, को बात-चीत सहित रूबरू दीदार साक्षात् दर्शन सहित परिचय-परख पहचान करके आपस में जो असल भगवदवतारी हो, उसी से (जो असल होगा, वह श्रद्धा-समर्पण-शरणागत होने पर पूर्व सत्ययुग-त्रेतायुग-द्वापरयुग की तरह वर्तमान में भी साक्षात् दर्शन करायेंगे ही) उनसे प्राप्त किया जाय और उन्हीं के देख-रेख-संचालन में रह-चलकर पुनः 'धर्म-धर्मात्मा-धरती की रक्षा' करते-कराते हुये 'धर्म और धर्मात्मा' के खोयी हुई मान्यता (मर्यादा) को पुनः और ही श्रेष्ठतर रूप में स्थापित किया-कराया जाय।

यदि उपर्युक्त समस्त (शरीर-जिस्म-बॉडी व जीव-रूह-सेल्फ-एवं आत्मा-ईश्वर-ब्रह्म-नूर-सोल-स्पिरिट-ज्योतिर्मय शिव और परमात्मा-परमेश्वर-परमब्रह्म-खुदा-गॉड-भगवान्) का पृथक्-पृथक् बात-चीत सहित साक्षात् दर्शन परिचय- परख-पहचान कराने की कोई जिम्मेदारी नहीं ले पाता है, तब मैं (सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस) वह जिम्मेदारी स्वीकार कर जैसा कि उपर्युक्त वर्णित है, ठीक-ठीक वैसा ही

कर-कराकर दिखाऊँगा और किसी भी अभिमान-अहंकार के वगैर बड़े ही प्रेम और सौहार्द के साथ सभी को ही यथायोग्य सम्मान देते हुये 'भगवदीय मर्यादा' का पालन करने-कराने की जिम्मेदारी के साथ ही सद्ग्रन्थीय मान्यता (वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, पुराण, बाइबिल, कुर्आन, गुरुग्रन्थ साहब आदि-आदि) के मान्यता के अन्तर्गत सत्पथ पर चलने-चलाने की सद्भावना के साथ जिम्मेदारी ले सकता हूँ ।

समस्त वर्ग-सम्प्रदाय पन्थ-ग्रन्थ के समस्त गुरुजन-सद्गुरुजन-तथाकथित भगवानों और अनुयायी-शिष्यगण आदि-आदि समस्त महानुभावों को बड़े ही प्रेम से सन्त ज्ञानेश्वर के प्रेम सद्भावना भरे साग्रह प्रस्ताव को स्वीकार कर प्रेम से एक मंच पर उपस्थित होकर मिल-बैठकर प्रेम-सौहार्द से सच्चाई को--परमसत्य को, परमप्रभु को जान-देख- परख-पहचान कर ही सही, हर प्रकार से सत्य होने पर ही सही, मगर प्रेम-सद्भाव से स्वीकार कर लेना चाहिए । स्वीकार कर ही लेना चाहिए, क्योंकि 'परमसत्य' रूप परमप्रभु को प्राप्त करते ही अपना निज स्वरूप तो प्राप्त होता ही होता है, साथ ही साथ आत्मा-नूर-सोल-ज्योतिर्मय शिव भी -- ये दोनों भी सहज ही प्राप्त हो जाया करते हैं । जैसे पी० एच० डी० की पढ़ाई में एम० ए०, बी० ए० और हाई स्कूल आदि सभी कक्षायें समाहित रहते हैं और जो सहज ही प्राप्त हो जाया करती हैं । मगर यहाँ यह बात याद रहे कि शरीर-जिस्म-बॉडी जैसे हाई स्कूल में निज स्वरूप जैसे बी० ए० और आत्मा-नूर-सोल-शिव जैसे एम० ए० तो होता ही नहीं, परमात्मा-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् जैसे पी० एच० डी० की कल्पना भी हास्यास्पद ही होगी । थोड़ा समझाने-समझने मात्र के लिये ही यह उदाहरण है न कि ऐसा ही है ।

सच्चे भगवदवतारी की पहचान 'तत्त्वज्ञान' से

आप सभी को ही एक बात कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रारम्भ में जब धर्म को स्वीकार करने चले थे या चलने लगे थे तब हम लोगों का लक्ष्य धन-जन एकत्रित करने के लिये, बढ़िया से बढ़िया आश्रम बनवाने के लिये अथवा खूब प्रचारित-प्रसारित होने और काफी मान-सम्मान आदि-आदि पाने के लिये हम सभी गुरुजन-सद्गुरुजन, तथाकथित भगवान्जी लोग और अनुयायी-शिष्यगण (धर्म-प्रेमी- धर्मात्मागण) नहीं आये थे। आप सभी 'ज्ञान-तत्त्वज्ञान' पाने के लिये -- आप अपने निज रूप यानी 'हम' जीव-रूह-सेल्फ को जानने-देखने और पहचानने तत्पश्चात् आत्मा-नूर-सोल-ज्योतिर्मय शिव को अलग-अलग जानते-देखते हुये परमात्मा-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान् का भी बात-चीत सहित साक्षात्-दर्शन पाने के लिये, साथ ही साथ मुक्ति और अमरता का साक्षात् बोध पाने के लिये ही 'धर्म' को स्वीकार किये थे ! क्या यह 'सच' ही नहीं है ? फिर आज धन-जन-आश्रम-मान-सम्मान आदि-आदि झूठे मायावी चकाचौंध

के पीछे अपने 'मूल उद्देश्य' से क्यों भटक गये ?

आप सबके पास कितना धन हो गया है जो अपने मूल उदेद्श्य भगवत् प्राप्ति व मुक्ति-अमरता के साक्षात् बोध से ही भटक गये ? क्या कुबेर से भी अधिक धन हो गया है ? नहीं ! कदापि नहीं !!

कितना जन (अनुयायी शिष्यजन) आप बना लिये हैं ? क्या ३३ करोड़ वाले देवराज इन्द्र से भी अधिक है ? नहीं ! कदापि नहीं !!

आप कितनी क्षमता-सिद्धि हासिल कर लिये ? क्या सभी के ही मृत्यु रूप यमराज और सृष्टि के संहारक शंकर जी से भी अधिक ? नहीं ! कदापि नहीं !!

कितने आश्रमों की रचना (निर्माण) कर-करा लिये हैं ? क्या सृष्टि के रचयिता विश्वकर्मा और ब्रह्मा जी से भी अधिक ? नहीं ! कदापि नहीं !!

कुल कितने अनुयायी-शिष्य आपके पीछे-पीछे रहते-चलते हैं ? क्या दस हजार अनुगामी के साथ चलने वाले दुर्वासा से भी अधिक ? नहीं ! कदापि नहीं !!

जब तैंतीस करोड़ देवताओं का राजा इन्द्र जी भी भगवान् नहीं हैं;--जब सभी को मौत (मृत्यु) देने वाला यमराज जी भी भगवान् नहीं है; --उमा-रमा-ब्रह्मानी जी भी जब भगवान् नहीं है; सभी सिद्धियों के अधिष्ठाता सृष्टि संहारक शंकर जी भी भगवान् नहीं है तो एक बार आप अपने को तो देखिये ! धन(कुबेर)-जन(इन्द्र)-आश्रम(ब्रह्मा) मान-सम्मान (महादेव-महेश) भी भगवान् या भगवदवतारी नहीं हैं तो आप कौन और कितने में हैं ? देखिये तो सही ! झूठी मान्यता कब तक ठहर पायेगी ? अन्ततः 'सत्य' को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा ।

जब ये उपर्युक्त कुबेर-इन्द्र-यमराज-शंकरजी-विश्वकर्मा-ब्रह्मा जी-दुर्वासा आदि-आदि भगवान्-भगवदवतार नहीं बने, अपने को ऐसा घोषित नहीं किये-कराये तो आप लोग ऐसा क्यों बनने-करने में लगे हैं ? अपने को ही क्यों घोषित करने-करवाने में लगे हैं ? क्या ये लोग ॐ वाले नहीं थे ? सोऽहँ-हँसो वाले नहीं थे ? क्या ये सिद्ध-शक्ति-सत्ता- सामर्थ्य-योग-साधना-अध्यात्म वाले नहीं थे ? क्या ये तथाकथित गायत्री-क्षमता वाले नहीं थे ? क्या ये ज्योर्तिबिन्दु रूप शिव वाले नहीं थे ? एक बार थोड़ा अहंकार-अभिमान से अलग-ऊपर-परे होकर तो अपने को देखने का प्रयास कीजिये, समझ में आने लगेगा। ॐ-सोऽहँ-हँसो-ज्योर्तिविन्दु रूप शिव न कभी भगवान् था, न है और न होगा । ॐ का पितामह और सोऽहँ-हँसो का पिता सम्पूर्ण शक्तियों सहित आत्मा-ईश्वर-नूर-सोल-दिव्य ज्योति-ज्योतिर्विन्दु रूप शिव का भी पिता व सम्पूर्ण सृष्टि
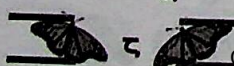
का उत्पत्ति-स्थिति-संहार कर्त्ता रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप अलम्-गॉड रूप परमेश्वर ही खुदा-भगवान् था, है और रहेगा भी। उन्हें स्वीकार कर लेने में ही सभी का कल्याण है। परम कल्याण है। बार-बार ही कहना पड़ रहा है चाहे जैसे भी हो अन्ततः स्वीकार तो करना ही पड़ेगा।

गायत्री छन्द मात्र में उद्धृत होने के नाते ॐ-देव मन्त्र (ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।') के अभीष्ट ॐ-देव को समाप्त कर उनके स्थान पर झूठी व काल्पनिक देवी को स्थापित कर प्रचारित करना-कराना क्या देव द्रोहिता नहीं हैं? असुरता नहीं है? क्या यह मन्त्र देवी (स्त्रीलिंग) प्रधान है या भर्गोदेवस्य (पुलिंग) प्रधान? जब यह मन्त्र ॐ-देव (पुलिंग) प्रधान है तब यह देवी (स्त्रीलिंग) कहाँ से आ गयी? क्या प्यार पाने के लिये पिता जी को माता जी कहकर बुलाया जाय और उनके फोटो-चित्र को स्त्री रूपा बना दिया जाय? यही आप सबकी मान्यता है? यही 'देव संस्कृति' संस्थापन कहलायेगा? जिसमें मन्त्र के अभिष्ट ॐ-देव को ही समाप्त करके उसके जगह पर झूठी व काल्पनिक देवी को स्थापित कर दिया जाय? क्या यह देव द्रोहिता नहीं है? निः संदेह यही देव द्रोहिता और यही असुरता भी है! क्या कोई भी मेरे इन बातों को गलत प्रमाणित करेगा?

चन्दा के नाम पर अपने मिथ्या महत्त्वाकाँक्षा पूर्ति हेतु अपने अनुयायियों से भीख मँगवा-मँगवा कर और नौकरी के रूप में उनको कमीशन देकर अधिकाधिक धन उगाही करने मात्र के लिये ही तथाकथित धर्म नाम आयोजन आयोजित करना क्या जनता और जनमानस के धन और धर्म भाव का शोषण करना नहीं है? ऐसे शोषण से जनता और जनमानस को निःसंदेह बचाने के लिये, सही और समुचित लगे तो मेरे इस परमपुनीत देव संस्कृति संरक्षण अभियान में, सद्भाव के साथ लगकर आप यश-कीर्ति के भागीदार बनें और ऐसे आसुरी दुष्प्रचार का भण्डाफोड़ कर जनमानस में इस सच्चाई को रखकर उनके शोषण से उनकी रक्षा करने में अपने को लगें-लगावें। इसी में ही जीवन की सार्थकता और सफलता है।

यहाँ एक बात मैं अवश्य कह देना चाहता हूँ कि यह तत्त्वज्ञान जिससे 'सम्पूर्ण' ही सम्पूर्णतया उपलब्ध हो सके, वर्तमान में पूरे धरती पर ही अन्य किसी के भी पास नहीं है! यदि कोई कहता है कि मेरे पास ऐसा 'तत्त्वज्ञान' है, तो जनमानस के परम कल्याण को देखते हुए मुझे यह कहना पड़ेगा कि वह सरासर झूठ बोलता है। समाज को धोखा देता है। अब यदि कोई मेरे इस बात को निन्दा करना, शिकायत करना, नीचा दिखाना या अहंकारी होना कहे, तो जनकल्याणार्थ मुझे आपसे यह पूछना पड़ेगा कि आप ही

बतावें कि सच्चाई यदि ऐसी ही हो तो मैं कहूँ क्या ? क्या समाज को धोखा में पड़े ही रहने दूँ ? समाज को सच्चाई से अवगत न कराऊँ ? नही ! ऐसा नहीं हो सकता । आप मिलकर तो देखें।

पुनः कह रहा हूँ कि यह 'तत्त्वज्ञान' अन्य किसी के भी पास नहीं है! यदि कोई कहता है कि मेरे पास है तो उसकी इस घोषणा को सप्रमाण प्रैक्टिकली (प्रायौगिक रूप से) भी गलत प्रमाणित करने के लिये तैयार भी तो हूँ और इस बात का बचन भी तो देता हूँ कि मैं अपने उपर्युक्त कथन को गलत प्रमाणित करने वाले के प्रति समर्पित-शरणागत हो जाऊँगा । मगर सही होने पर उसे भी समर्पित-शरणागत करना-होना होगा । सब सद्ग्रन्थीय आधार पर ही मनमाना कुछ भी नहीं ।

अन्ततः कह दूँ कि वास्तव में मैं किसी का भी आलोचक या निन्दक या विरोधी नहीं हूँ, अपितु सभी का ही सहायक और सहयोगी हूँ । शान्तिमय ढंग से मिल बैठ कर सप्रमाण वार्ता कर जाँच कर लें । मगर हाँ, सत्य बोलना मेरा सहज स्वभाव और कर्त्तव्य भी है, जो हमेशा करता रहूँगा, चाहे किसी को बुरा लगे या भला ।

जीवन को सार्थक-सफल बनावें ! भगवत् कृपा रूप भगवद् ज्ञान (तत्त्वज्ञान) को अपनावें! मिथ्या-महत्त्वाकांक्षी गुरुओं के पीछे नहीं, बल्कि भगवान् को पहले अपने आप 'हम' जीव और आत्मा-ईश्वर को भी पृथक्-पृथक् तीनों को ही जान-देख साक्षात् बात-चीत करते-पहचानते हुए उन्हीं के प्रति ही समर्पित-शरणागत होवें-रहें। इसी में जीवन का सार्थक-सफल होना है , अन्यथा नहीं । समय रहते समझें-बूझें-चेतें!

कहता हूँ मान लें, सत्यता को जान लें । मुक्ति-अमरता देने वाले परमप्रभु को पहचान लें ।। जिद्द-हठ से मुक्ति नहीं, मुक्ति मिलती 'ज्ञान' से ।
मिथ्या गुरु छोड़ो भइया, सम्बन्ध जोड़ो सीधे भगवान् से ।।

वास्तविकता तो यह है कि मेरे पास एक ऐसा 'ज्ञान (तत्त्वज्ञान)' है जो परमसत्य है और जिसमें किसी की भी निन्दा-शिकायत नहीं, अपितु सभी की ही यथार्थ स्थिति का खुलासा है। मैं यह बार-बार ही कह रहा हूँ कि पूरे भू-मण्डल पर ही मेरा किसी से भी कोई विरोध है तो मात्र असत्य-अधर्म, अन्याय और अनीति से है । आश्चर्य है कि सभी का ही सहयोगी रहने पर भी कहा जा रहा हूँ विरोधी । जो खुलासा है, उसे गलत क्यों नहीं प्रमाणित किया जा रहा है ? मेरे द्वारा देय तत्त्वज्ञान को गलत प्रमाणित क्यों नहीं कर दिया जा रहा हैं ? कर दिया जाता तो मैं भी अपने को ही गलत मान लेता । किन्तु यह सत्य ही, परम सत्य ही है तो कोई गलत प्रमाणित कैसे कर सकता है ? नहीं कर सकता । सब भगवत् कृपा ।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

'पुरुषोत्तम धाम आश्रम', पुरुषोत्तम नगर- सिद्धौर, बाराबंकी-२२५ ४१३ उ० प्र० ।

पतन के तरफ ले जाने वाला गृहस्थ जीवन

प्रेम से बोलिये श्रीसद्गुरुदेव जी महाराज !
परमपिता परमेश्वर की जय !!
आनन्दकन्द लीला धारी प्रभु सदानन्द जी मनमोहन भगवान की जय !!

श्रीभगवान् के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम करते हुए प्रार्थना है कि ! हे ज्ञानदाता-मुक्ति-अमरता के दाता, दयासागर भक्त वत्सल प्रभु पतन-विनाश के तरफ ले जाने वाला ये साँसारिकता-पारिवारिकता, माया मोहासक्त गृहस्थ जीवन से सदा अपने त्यागी-वैरागी भक्त-सेवक को बचा के रखना और अपने श्रीचरणों का अनन्य भक्ति-सेवा-प्रेम से युक्त वैराग्यवान बनाये रखें आपसे कोटिशः प्रार्थना है।

परमेश्वर द्वारा नियत दो क्षेत्र है एक लौकिक जिसमें शरीर-परिवार- संसार है जिसको गृहस्थ जीवन भी कहते हैं । इस क्षेत्र का मालिकाना माया के हाथ में होता है माया जीव को मोक्ष पर्यन्त तड़पाती रहती है । परमात्मा या परमब्रह्म के नित्य सम्पर्क सेवा में रहने वाले आत्मा या ब्रह्म से बिछुड़ा (सम्बन्ध काट) कर विनाशी अधः पतित रूप घोर घृणित माया-मोहासक्त बनाने वाला गृहस्थ जीवन में कामना ही कामना है, जिसकी पूर्ति के लिए हर तरह का पाप-कुकर्म, सभी अपराध को करना पड़ता है । जिसका फल पतन और विनाश है । यही गति गृहस्थ जीवन की है ।

परमेश्वर द्वारा नियत दूसरा क्षेत्र है पारलौकिक जिसको धर्म और मोक्ष भी कहते हैं जहाँ जीव-आत्मा-परमात्मा तीनों का स्पष्ट अलग-अलग जानकारी दर्शन उपलब्धि है जिस क्षेत्र का मालिकान पूर्णतया परमेश्वर के हाथ में होता है । धर्म और मोक्ष के क्षेत्र में कोई कामना नहीं होता यदि कदाचित कामना आ ही गई तो परमेश्वर के कृपा से कामना की पूर्ति हेतु अर्थ पहले से ही रहता है । इस क्षेत्र में रहने वाले महापुरुष-सत्पुरुषों की पूर्णतया लोक-परलोक दोनों की जिम्मेदारी भगवान् के हाथ में होता है । सम्पूर्ण कर्म बन्धनों से मुक्ति, भव के बन्धनों से मुक्ति-अमरता यश-कीर्ति इस क्षेत्र की उपलब्धि होती है ।

आप बन्धुओं को यह निर्णय लेना है कि आप को माया-मोहासक्त विनाशशील लौकिक साँसारिक गृहस्थ बनना है या इनसे परे माया-मोह रहित 'शान्ति और आनन्द की अनुभूति एवं परमशान्ति एवं परमानन्द तथा "मुक्ति और अमरता से युक्त" अविनाशी एवं अमरता के बोध रूप ब्रह्ममय आध्यात्मिक-महापुरुष एवं तात्त्विक परमपुरुष रूप भगवदवतार के पार्षद रूप सत्पुरुष बनाने वाला धर्म और मोक्ष वाला मार्ग यह दोनों मार्ग अपने-अपने गुण-दोषों के साथ आपके समक्ष है । आप जिस जीवन में अपने को रखेगें उस क्षेत्र की लाभ-उपलब्धि आप को मिलेगा ।

मेरे सद्गुरु के अनुसार "परिवार बसाकर कोई गृहस्थ आदमी शान्त नहीं रह सकता है, स्थिर नहीं रह सकता है, सुख से नहीं रह सकता है, स्वतन्त्रता एवं स्वछन्दता समाप्त हो जाती है, पराधीनता एवं पैरों में मोह डण्डा-बेड़ी तथा हाथका में ममता -आसक्ति रूपी हथकड़ी लग जाती है, जिससे छूटना जन्म-जन्मान्तर तक के लिए भी कठिन है, लोहे की हथकड़ी तो खुल जाती है परन्तु मोह-ममता वाली करोड़ों जन्मों तक खुलनी आसान नहीं है । परिवार से सुख-चैन छिन जाता है, नाना प्रकार की चिन्ताएँ रात-दिन जलाने लगती हैं, समस्याएँ एक न एक सिर पर चढ़ी ही रहती हैं, अथक परिश्रम करके लाइये, तब भी ठीक से भरण-पोषण मुश्किल हो जाता है, चोरी, लूट, जोर-जुल्म, अत्याचार तथा सभी भ्रष्टाचारों का मूलरूप घूसखोरी आदि सब कुकर्म-पाप राशि बटोर-बटोर कर तो किसी तरह पारिवारिक भरण-पोषण हो पाता है अर्थात् गृहस्थ जीवन सभी कुकर्मों सभी आपत्तियों-विपत्तियों तथा पाप राशि बटोरने वाली महान् विपत्ति ही है । जिसकी आध्यात्मिक महापुरुष तो घोर घृणा के रूप में निन्दा करते ही रहे हैं, तात्त्विक सत्पुरुष रूप भगवदवतार भी खुले दिल से घोर घृणित भाव में निन्दा किए वगैर नहीं रह सके ।"

भगवान् श्रीविष्णु जी के अनुसार--"केवल अधर्म से कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिये प्रयत्नशील व्यक्ति अंधकार की पराकाष्ठा अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है ।" गरुड़ पु०३/७०

"लौह एवं लकड़ी से बने हुए पाशोंसे बँधा हुआ मनुष्य मुक्त हो सकता है, किन्तु पुत्र और पत्नी रूपी पाशों से बँधा मनुष्य कभी भी मुक्त नहीं हो सकता ।" गरुड़ पु०१६/४७

भगवान् श्री राम जी के अनुसार --

काम क्रोध लोभादि मद् प्रबल मोह के धारी ।

तिन्ह महँ अति दारून दुःखद माया रूपी नारी । ४३/अ/का/

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुःख खानि ।

ताते कीन्ह निवारण मुनि मैं यह जींय जानी । ४४

काम, क्रोध,लोभ, मद आदि मोह के शक्तिशाली (हथियार) के धार के रूप में है । इन सभी के बीच जो सबसे अधिक कष्ट देने वाला दुःख माया रूपी स्त्री होती है ।

इससे नारी सभी अवगुणों की खान तथा सूल आदि समस्त कष्टों को भी देने वाली है । इतना ही नहीं ये स्त्रियाँ सभी दुःखों की खान ही होती है । इनके सम्पर्क वाला व्यक्ति सुख चाहे तो यह बिल्कुल ही असम्भव बात है । इनसे सम्पर्क रखने वाले को हमेशा कष्ट एवं दुःख झेलते रहना पड़ता है । हे मुनि ! यही सब मैं अपने अन्दर में जान समझ करके ही आप को विवाह करने नहीं दिया । इस विवाह रूप माया-मोह-ममता-वासना आदि वाली स्त्री से आप को बचाया है ।

भगवान् श्री कृष्ण जी के अनुसार --

"जितने भी सकाम और बहिर्मुख करने वाले कर्म है, उनका फल दुःख ही है । जो भी जीव शरीर में अहंता-ममता करके उन्हीं में लग जाता है, उसे बार-बार जन्म और मृत्यु पर मृत्यु प्राप्त होती है । ऐसी परिस्थिति में मृत्युधर्मा जीव को क्या सुख हो सकता है ?"

अर्थात् गृहस्थ जीवन में रहकर इस मानव जीवन की मंजिल मोक्ष की प्राप्ति कदापि सम्भव ही नहीं है बल्कि घनघोर नारकीय यातनायें दिलाने वाला यह गृहस्थ जीवन होता हैं । यदि आप महापुरुषत्त्व-सत्पुरुषत्त्व की प्राप्ति करना चाहते हो मुक्ति-अमरता से युक्त होना चाहते हों तो पतित गृहस्थ जीवन छोड़कर अपने जीवन को भगवान् का निज क्षेत्र धर्म और मोक्ष के मार्ग में अपने जीवन को करना ही होगा ।

बन्धुजन यह सद्ग्रन्थ आपको हस्तगत है कृपया इसको पढ़कर अपने जीवन को पतन-विनाश के तरफ जाने से रोकें और धर्म-मोक्ष में स्थित करके देव दुलर्भ जीवन को सार्थक-सफल बनावें । शेष सब भगवत् कृपा ।

आप का शुभेच्छु

कमल जी 'परमतत्त्वम् धाम आश्रम'

गृहस्थ जीवन

सद्भावी गृहासक्त बन्धुओं ! साँसारिक व्यवस्था के आभासित पोषक आप बन्धुओं से आप बन्धुओं के सम्बन्ध में भगवत् कृपा से हम यहाँ पर कुछ कटु सत्य बातें बताने अथवा जानकारी देने हेतु आगे बढ़ रहे हैं । सत्यता के कारण कुछ कटु लगने वाली बातें भी इसमें आ सकती हैं क्योंकि हम परमसत्य के संस्थापक एवं संचालक होने के कारण सत्य एवं यथार्थ बातें कहने हेतु मजबूर हैं। इसीलिए आप बन्धुओं से पहले निवेदन कर दे रहा हूँ कि आप बजाय दुःख मानने, चिढ़ने या विक्षुब्ध होने के गम्भीरतापूर्वक यथार्थ बात जानने-समझने और सत्य को स्पष्टतः साक्षात् देखने का प्रयत्न करें ।

सद्भावी गृहासक्त बन्धुओं ! आइए अब मूल विषय-वार्ता पर चला जाय। प्रायः गृहस्थ जीवन की शुरुआत शादी-विवाह से ही शुरू होते देखा जाता है । हालाँकि अविवाहित गृहासक्त मानव भी गृहस्थ वर्ग में ही आते हैं । गृहस्थ जीवन शारीरिक एवं साँसारिक कर्म तथा उसके अनुसार भोग प्रधान जीवन व्यवस्था है । इसके अन्तर्गत चार स्तर विशेषतः दृष्टिगत होता है -- जनम-करम-भोग-मरण पुनः वही क्रम जनम-करम-भोग-मरण, पुनः पुनः पुनः वही क्रम जनम-करम-भोग-मरण से सम्बन्धित ही एक जीवन व्यवस्था है । यह वर्ग (गृहासक्त) जितना ही जढ़ी होता है, उतना ही मूढ़; जितना ही परिश्रमी होता है, उतना ही आसक्त; जितना ही अभागा होता है, उतना ही पतित; जितना ही साधन सम्पन्न होता है, उतना ही अशान्त; जितना ही सुख की चाह रखता है, उतना ही कष्ट पाता है; आदि आदि यह वर्ग अधः पतन को प्राप्त अधः पतित ही होता है । यह कथन चूँकि पूर्णतः 'सत्य' पर आधारित है इसलिए जो इस बिल्कुल ही मिथ्यात्त्व पर आधारित परिवार-संसार में सटे-चिपके बन्धुओं को थोड़ा-बहुत कष्ट हो सकता है । मगर सच्चाई पूर्णतः ऐसा ही हो तो कहा ही क्या जा सकता है ।

विवाह

सद्भावी गृहस्थ बन्धुओं ! आइये पहले-पहल यह देखा जाय कि शादी-विवाह क्या है तथा समाज को इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है ? क्या सभी के लिए विवाह की अनिवार्यता है ? आनन्दमय जीवन हेतु विवाह क्या सबसे जरूरी विधान है जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु विवाह क्या जरूरी यानी आवश्यक है ? आदि आदि विषयों पर थोड़ा-बहुत सूझ-बूझ के साथ आप पाठक बन्धुओं हेतु अथवा इसके श्रोता बन्धुओं के लिए भी अपना 'मत' प्रस्तुत कर रहा हूँ जो निश्चित ही कामी, लोभी, मूढ़ एवं आसक्त के लिए लगने वाली या विक्षुब्ध होने वाली बात है परन्तु सूझ-बूझ वाले के लिए तो सागर में डूबते हुए को बचाने हेतु एक सुदृढ़ नाविक से युक्त सुदृढ़ नाव के समान ही होगा । विवाह 'सन्तान उत्पन्न करने के साथ-साथ सुखमय जीवन यापन हेतु लड़की-लड़का का मान्य विधानों के अनुसार सह-जीवन ही विवाह है ।' 'विवाह गृहस्थ जीवन की प्रायः सबसे पहली कड़ी या विधान होता है जिससे प्रायः सभी लोग ही यह जान मान लेते हैं कि अब यह गृहस्थ जीवन में आ गया यानी गृहस्थ बन गया । अब यह खेती-बारी, व्यापार, नौकरी-चाकरी आदि करता हुआ परिवार का पालन-पोषण तथा वंशवृद्धि करेगा । यही गृहस्थ जीवन का कार्य एवं लक्ष्य होता है जिसकी प्रायः सभी गृहस्थ ही कामना करते हैं ।

सहयोग

सद्भावी गृहस्थ बन्धुओं ! आइये जरा इसे देखा जाय कि विवाह की आवश्यकता ही क्यों पड़ती है ? अब यहाँ पर यही प्रश्न हल किया जाय या शंका-समाधान किया जाय । आदि से पूर्व एकमात्र परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप शब्दब्रह्म ही परमब्रह्म रूप सर्व शक्ति-सत्ता-सामर्थ्य युक्त थे जिसके अन्दर अचानक एक तरंग उठा कि 'कुछ हो।' चूँकि वह शब्द ब्रह्म रूप परमब्रह्म संकल्प शक्ति से युक्त थे, इसी से 'कुछ हो' ऐसा तरंग उठते ही उसी में से 'आत्म' निकल कर पृथक् हुआ, जो एक आश्चर्यमय प्रचण्ड ज्योति पुंज से युक्त था, जो आत्म-ज्योति है । वह आत्म-ज्योति चेतना युक्त थी । यही आत्म-ज्योति आदि शक्ति के रूप में प्रकट हुई क्योंकि आदि शक्ति एकमात्र उसी शब्द ब्रह्म शब्द रूप

परमब्रह्म की अंगभूता संकल्प-शक्ति ही हैं । जब-जब सृष्टि उत्पत्ति की बात उनके अन्दर तरंग रूप में हिलौरें मारती हैं, तब-तब सर्वप्रथम यही 'आत्म-ज्योति' रूपा आदि शक्ति उत्पन्न या प्रकट होती है और उन्हीं के सकाश तथा अध्यक्षता में सृष्टि-रचना कार्य करती-कराती हैं तथा उन्हीं के सकाश या मालिकाना में उन्हीं की सेविका रूप में सृष्टि का संचालन और अन्त में सृष्टि-लय करती-कराती हुई वह भी उन्हीं में लय यानी विलीन हो जाती है । यह 'आत्म-शक्ति' ही कालान्तर में ब्रह्म-शक्ति, ईश्वर-शक्ति, दिव्य शक्ति, शिव-शक्ति, प्रकृति, आदि-शक्ति, महा माया, चेतन-शक्ति आदि शब्द से जानी गयी। सृष्टि-रचना; सृष्टि-संचालन तथा सृष्टि-लय यही करती-कराती है । इनका मालिक शब्द ब्रह्म रूप परमब्रह्म रूप खुदा-गॉड-भगवान् तो सदा ही परमानन्द रूप सच्चिदानन्द रूप सदानन्द में ही सदा आनन्दित रहते हैं । जब-जब आदि शक्ति के माध्यम से सॉंसारिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न की बात सुनते हैं तथा यह भी जानते हैं कि अब भू-मण्डल की व्यवस्था आदि-शक्ति से भी सुलझने वाला नहीं होता है; तब तब वही (परम प्रभु) अवतार लेकर सबको 'ठीक' करते हैं तथा व्यवस्था कर-करा कर दिखाते हुए कि व्यवस्था ऐसे होता है । पुनः अपने परम आकाश रूप परमधाम को वापस हो जाते हैं ।

यहाँ पर इस बात को लाने कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि कोई जब कुछ करना सोचेगा या करना चाहेगा, तो सर्वप्रथम उसके लिए सहयोग करना-लेना होगा जैसा कि परमब्रह्म और आदि-शक्ति की बात ऊपर कही गयी है। सृष्टि के रचना हेतु वे भी आदि-शक्ति को सहयोगिनी बनाये । आदि शक्ति को जब सृष्टि-रचना करना हुआ तो ब्रह्मा-स्वरसती को उत्पन्न कर उनका सहयोग ली, पुनः संचालन हेतु विष्णु व लक्ष्मी को उत्पन्न किया तथा उनका सहयोग लिया पुनः सृष्टि लय या संहार हेतु शंकर व उमा को उत्पन्न कर उनका सहयोग लिया। यहाँ सर्व प्रथम उत्पत्ति विष्णु की की गयी थी । क्रमशः ये लोग भी सहयोग लिए तथा यही क्रम आज तक भी है ।

सदा स्मरण रखने योग्य क्रम की उपयुक्त बातें

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! संसार का महत्त्व शरीर रहने तक ही है, शरीर से पृथक् संसार का कोई महत्त्व नहीं; पुनः जीव का महत्व आत्म से सम्बन्ध पर ही है। आत्मा से पृथक् जीव का कोई महत्व नहीं है; तथा अन्ततः आत्मा का महत्व परमात्मा से सम्बन्ध पर ही है, परमात्मा से पृथक् आत्मा का भी कोई महत्त्व नहीं होता है । यह सदा स्मरणीय बात है ।

पुनः एक दूसरा क्रम :- शरीर को संसार के पीछे नहीं ले जाना चाहिए अर्थात् शरीर को संसार के तरफ नहीं देखना व जाना चाहिए बल्कि संसार को ही शरीर के पीछे चलना चाहिए यानी ऐसा करना चाहिए कि संसार शरीर की ओर देखे और चले । शरीर संसार को मात्र इतना ही भर के लिए देखे और चले ताकि संसार शरीर के पीछे देखने चलने लगे, पुनः जीव को शरीर के तरफ नहीं देखना चाहिए तथा शरीर के अनुकूल भी नहीं होना चाहिए, बल्कि शरीर को ही जीव की ओर देखना तथा जीव के अनुकूल होना चलना चाहिए । हाँ, जीव शरीर के तरफ मात्र उतना ही देखे तथा शरीर के अनुकूल मात्र उतना ही होवे-चले जिससे कि शरीर जीव के तरफ तथा जीव के अनुकूल आसानी पूर्वक रह और चल सके । पुनः आत्मा को जीव के तरफ नहीं देखना तथा जीव के अनुसार नहीं होना-चलना चाहिए बल्कि जीव को ही आत्मा की ओर तथा आत्मा के अनुसार देखना-होना तथा चलना चाहिए। हाँ आत्मा जीव के तरफ मात्र उतना ही देखे-चले जितना कि जीव आसानी से आत्मा के तरफ देखने-रहने व चलने लगे तथा अन्ततः परमात्मा आत्मा के तरफ नहीं देखता तथा आत्मा के अनुसार नहीं चलता है, बल्कि आत्मा को परमात्मा के तरफ ही देखना तथा परमात्मा के अनुसार ही रहना-चलना चाहिए । हाँ परमात्मा भी आत्मा के तरफ देखता तथा आत्मा के अनुसार रहता-चलता है परन्तु मात्र उतना ही भर देखता-रहता-चलता भी है, जितना से

कि आत्मा आसानी से परमात्मा की ओर ही देखने-रहने तथा चलने लगे । यदि सृष्टि में यह क्रम ही लागू हो जाय तो सारी कमी, सारी गड़बड़ी, सारी परेशानी सुगमता पूर्वक बिल्कुल आसानी से ही ठीक हो जाय ।

बन्धुओं ! आप लोग सोच रहे होंगे कि क्या विषय शुरू हुआ और क्या हो रहा है, तो हम तो यही कहेंगे कि विषय नहीं हल या समाधान हो रहा है, आप चूँकि संकुचित दायरे में हैं इसीलिए संकुचित दृष्टि हेतु यह बाहर की बात है परन्तु दृष्टि की विस्तृत एवं दूरदर्शिता के साथ जैसे ही देखना प्रारम्भ करेंगे तो दिखायी देगा कि ठीक है । शरीर की उत्पत्ति, विकास तथा रक्षा-व्यवस्था मुख्यतः संसार से नहीं, बल्कि जीव से तथा जीव तक ही है । पुनः जीव की चेतना व शक्तिमत्ता मुख्यतः शरीर से नहीं बल्कि आत्मा से मिलता रहता है । पुनः आत्मा को चेतनता, शक्तिमत्ता, शान्तत्त्व तथा आनन्द मुख्यतः जीव से नहीं मिलता है बल्कि परमात्मा से ही मिलता रहता है । अब यहाँ पर सूझ-बूझ से देखें कि - साँसारिकता का विधान भी यही कहता व मानता है कि जिससे जिसकी उत्पत्ति, रक्षा-व्यवस्था, विकास, शान्तत्त्व, चेतनता, शक्तिमत्ता, आनन्द आदि मिलता हो, तो पाने वाले को चाहिए कि देने वाले के अनुसार ही रहे-चले तथा उसका एहसान-शुक्र गुजार माने ।

हम क्या थे और क्या बना दिये गये ?

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! हम आत्मा या ब्रह्म थे परन्तु परमात्मा या परमब्रह्म के सकाश से आदि-शक्ति या महामाया रूप प्रकृति द्वारा पूर्व के प्रारब्ध के अनुसार तथा जैविकीय सम्बन्ध के कारण जीव रूप में पिता-माता की इच्छा के अनुसार पिता के अन्तर्गत शुक्र रूप में होता हुआ वीर्य के सहारे माता के गर्भ में आकर शरीर बना, परन्तु पुनः ब्रह्म शक्ति से प्राण-संचार द्वारा हम शरीर से पृथक् जीव शरीर में रहते हुए भी शरीरस्थ नार पुरइन (ब्रह्मनाल) के माध्यम से ऊर्ध्वमुखी मुद्रा में रहते हुए अपने (हम जीव के) असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति से दरश-परश से मेल-मिलाप रखते हुए--ब्रह्ममय (जीव+आत्मा हँ्सो) रूप में रहा । गर्भ में रहने तक तो ब्रह्ममय ही रहा, परन्तु गर्भ से बाहर आते ही, जढ़ता एवं मूढ़ता से ग्रस्त, अधःपतन को प्राप्त अधः पतित रूप शारीरिक माता-पिता या संरक्षक द्वारा चमईन (प्रसव सेविका) बुलवाकर उसी से शरीरस्थ नार-पुरईन कटवा दिया गया । जैसे ही नार-पुरइन कटा वैसे हम जीव का ब्रह्म-शक्ति से जो दरश-परश वाला जो सम्बन्ध था वह भी कट गया जिससे हम जीव को निरन्तर दिखलायी देने वाली उस ब्रह्म-ज्योति से हम जीव बिछुड़ कर घोर अंधेरा में हो गये । मेरे चारों तरफ जो ब्रह्म ज्योति थी उसके स्थान पर चारों तरफ ही घोर अंधेरा हो गया जिसके अन्दर मुझे अपनी सुध भी न रही और हम जीव अपनी ऊर्ध्वमुखी दृष्टि को चारों तरफ दौड़ा-दौड़ा कर लगे उस ब्रह्म ज्योति की खोज करने परन्तु सब प्रयत्नों के बावजूद भी हमें वह ब्रह्म ज्योति जो हमारे पिता-माता के रूप में थे तथा जिसने गर्भ जैसे घोर अंधेरी कोठरी में भी उजाला (दिव्य-ज्योति या ब्रह्म ज्योति) देते थे, जहाँ कुछ नहीं था वहाँ पर दिव्य ध्वनियाँ सुना-सुना कर आनन्द मग्न रखे थे, जहाँ कोई सहारा नहीं देने वाला था, वहाँ वे हमें प्राण संचार द्वारा नाम-- सोऽहँ-हँ्सो-शब्द का सहारा दिया तथा हमेशा हमें अपना ब्रह्म ज्योति रूप दर्शाते थे आदि आदि बातें सोचते हुए घोर अंधेरे में उस

ब्रह्म ज्योति को खोज करते हुए विक्षिप्त सा हो गये और अब हम जीव निःसहाय जैसे हो गये तो उस परेशानी के कारण हमारी ऊर्ध्वमुखी दृष्टि उस ब्रह्म ज्योति की खोज करती हुई अधोमुखी होकर परेशान होने लगी तब तक शारीरिक आँख जो बन्द थी, अचानक खुल गयी, तो विक्षिप्तता अवस्था में ही एक ज्योति (दीप-ज्योति) दिखलायी दिया, तो हम तो घोर अंधेरे में ज्योति (दिव्य ज्योति) के खोज में थे ही तो ज्योति (दीप ज्योति) देख मुझे कुछ राहत मिला। हमें क्या पता कि यह दीपक की ज्योति है जो हमको लुभाने फँसाने हेतु रखा गया है।

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! फिलहाल दीप-ज्योति ही को दिव्य ज्योति जान-मान कर कुछ राहत मिली, तब तक कुछ समय बाद ही आवाज भी कुछ उसी दिव्य ध्वनियाँ जैसी ही सुनायी पड़ी, तो असल आवाज जो हम जीव को दिव्य अविनाशी पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के यहाँ सुनने को मिलती थी, तो अब तो बिछुड़ जाने के कारण वह भी बन्द ही हो गयी थी तो हमको लगा कि ज्योति दिखलायी ही दे रही है और ध्वनियाँ (आवाज) भी सुनायी देने लगी, तो हमें पुनः आनन्द हुआ। हमें क्या पता है कि असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति से सम्बन्ध से बिछुड़ा-भटका कर उन्हीं अधः पतित रूप विनाशशील शारीरिक माता-पिता, भाई-बहनों आदि द्वारा हमको लुभाने-फँसाने हेतु यह नकली ध्वनियाँ (फूल की थाली बजा-बजवा कर) सुनायी जा रही है। हम उस आवाज में आनन्द मगन होकर सुनने लगे। धिक्कार है फँसाने वालों तुझको।

बन्धुओं ! पुनः हमें अमृत पान वाली बात याद आयी क्योंकि एक तो हमारा दिव्य सम्बन्ध कटवा दिया गया था, दूसरे हमारे ऊर्ध्वमुखी जिह्वा को कण्ठ कूप (खेंचरी-मुद्रा) से निकाल-खींच कर मुख में ला दिया गया, जिससे कि 'अमृत पान' बिल्कुल ही बन्द हो गया और जिह्वा सूखने लगा, तब तक 'अमृत' जैसा ही कुछ (मधु) हमारे जीभ (जिह्वा) पर रखा गया, जिसे मैं अमृत जान-मान कर उसका पान कर गया। हमको क्या पता कि हमको हमारे असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म शक्ति से बिछुड़ा कर अधः पतन को प्राप्त अधः पतित विनाशशील शारीरिक माता-पिता द्वारा ही हमें लुभाने-फँसाने हेतु ही 'अमृत पान' के जगह 'मधु-पान' करा रहे हैं। हम तो उसे असल अमृत समझ कर पान करने लगे। धिक्कार है तुझे, फँसाने वालों!

पुनः गर्भ में हमारे (जीव) के सहारा हेतु हमारे असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म शक्ति ने हमें प्राण-संचार के द्वारा होने वाली अखण्ड वृत्ति रूप नाम-- सोऽहँ-हँसो शब्द दिया था जिसके सहारे हम (जीव) निरन्तर उससे (ब्रह्म से) मिलते रहते थे, वह अखण्ड वृत्ति भी खण्डित हो गयी, जिसके स्थान पर हमें 'सोहर' गा-गा कर और उसमें अधः पतित रूप विनाशशील शारीरिक माता-पिता, भाई-बहनों आदि का नाम ले लेकर सुनाते हुए लुभाया फँसाया गया। धिक्कार है फँसाने वालों तुझे !

सद्भावी बन्धुओं ! पहले हम लोग ब्रह्म थे, प्रारब्ध वश हम आप शरीर में आकर जीव बने, पुनः ब्रह्म-शक्ति के सहयोग से ब्रह्ममय बने, तत्पश्चात् उधर से ब्रह्ममय वृत्ति से बिछुड़ा कर शरीरमय माता शरीरमय पिता, शरीरमय भाई-बहन, बन्धु-बान्धवों में फँसाते हुए हमें शरीरमय से भी शरीर बना दिया गया। शरीरों में काफी समय बाद यानी उपनयन संस्कार तक शूद्रवत् व्यवहार किया-कराया गया, जिससे कि मेरा पतन होता हुआ-ब्रह्म से ब्रह्ममय जीव, ब्रह्ममय जीव से सीधे शरीरमय जीव, पुनः शरीरमय से शरीर तथा अधः पतन रूप शूद्र शरीरों तक बना पहुँचा दिया गया। धिक्कार है फँसाने वालों तुझे।

अमृत पान से जल पान तक

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! हम (जीव) जब अपने असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के सम्पर्क, दरश-परश अथवा मेल-मिलाप में थे, तब तो हमें (जीव को) 'अमृत पान' करने को मिलता रहा जिसमें किसी प्रकार का मल-विक्षेप की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। वहाँ पर सदा ही अन्न-जल के स्थान पर अमृत पान ही मिलता रहता है। अन्न-जल ग्रहण करने पर तो मल-विक्षेप करना ही पड़ता है और पड़ेगा भी। वहाँ पर न तो कोई साँसारिक कर्म ही होता है और न तो साँसारिक किसी भोग की आवश्यकता ही महशूस होती है। हमारे (जीव के) दिव्य माता-पिता के यहाँ तो बराबर ही शान्ति बनी रहती है और आनन्दानुभूति होती रहती है, वहाँ क्षुधा-तृष्णा जा ही नहीं सकती है क्योंकि निरन्तर ही अमृत बूँद झरता-टपकता रहता है। हमारे (जीव के) उस दिव्य पिता-माता के सम्पर्क, दरश-परश या मेल-मिलाप में जो जीव चाहे

जितनी संख्या में ही क्यों न हो प्रत्येक को ही झरता व टपकता हुआ अमृत बूँद ही पान करने को मिलता रहता है, कौन कितना अमृत् पान करता है, यह भी वहाँ न तो कोई पूछ होती है और न मनाही ही, क्योंकि वहाँ पर इसकी कमी की बात सोची ही नहीं जा सकती है क्योंकि वह अक्षय भण्डार है । हमारे (जीव के) असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के यहाँ प्राण संचार रूप लिफ्ट (विद्युत सीढ़ी) में जो भी अपने को श्रद्धा-विश्वास के साथ रख देता है, वहाँ पहुँच जाता है, तो पहुँचते ही दिव्य ज्योति रूप अविनाशी दिव्य पिता-माता का साक्षात्कार दरश-परश होता है, वहाँ निरन्तर, अनवरत हो रही दिव्य ध्वनियाँ सुनने को मिलती हैं, जो आनन्द विभोर कर देती है, अन्न-जल के स्थान पर झरता व टपकता हुआ अमृत पान करने को मिलता है, तो हमारा (जीव का) अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति मेल-मिलाप में रहने वाले जीव को अपने समान ही शान्ति आनन्द तथा सत्ता-शक्ति से सम्पन्न बना देता है; वैसे हमारे (जीव के) अविनाशी पिता-माता रूप ब्रह्म शक्ति से सम्बन्ध विच्छेद करा कर अधःपतन को प्राप्त शारीरिक पिता-माता, संरक्षक आदि विनाशशील अधःपतित जन हम (जीव) को भी ब्रह्ममय से शरीरमय बनाते हुए, शरीरमय जीवभाव को भी समाप्त कर-करवा कर आभासित शरीर ही बना दिये सब; जो जीव का ब्रह्म से पतन होता हुआ अधःपतित रूप शरीर ही बना दिया । इतना ही नहीं, उपनयन संस्कार तक तो अछूत एवं शूद्रवत् शरीर बन कर ही रहना पड़ता है, जो एक तरह घोरतम अधः पतन ही है । अमृत् पान के स्थान पर शुरू-शुरू में मधु-पान कराया गया, पुनः शारीरिक माता के दुग्ध से सम्बन्ध जोड़वाकर दुग्धपान-पुनः गौ का दुग्ध पान कराया जाने लगा- कुछ को बकरी और कुछ को भैंस का दुग्ध पान कराया गया, जब दूध भी मिलना कठिन हो गया, तो अन्ततः स्थिति जल-पान तक पहुँची । आजकल तो अधिकांश लोगों की तो गर्मी के मौसम में तो जल भी बहुतों को किसी किसी तरह अपार कठिनाइयों का सामना करने पर मिल पा रहा है । राजधानियों में भी पीने के जल के लिए जुलूस निकल रहे हैं लोगों को अब जलपान भी दुर्लभ हो गया । धिक्कार है फँसाने वालों तुझे कि मुझे ब्रह्ममय से शारीरिक-पारिवारिक एवं साँसारिक बनाया जहाँ जलपान भी दुर्लभ है । हाय रे व्यवस्था तेरे को धिक्कार है, हाय रे सरकार तेरे को भी धिक्कार है कि तेरे जनता

को जल पान तक नहीं मिल पा रहा है । धिक्कार ! धिक्कार !! धिक्कार !!! ऐसी सरकार को जिसके जनता को जल पान तक नहीं मिल पा रहा है । एक तरफ तो पीने हेतु जल नहीं है और दूसरे तरफ दहतर (बाढ़) का ठेकाना (सीमा) नहीं है । यह है सब वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था एवं भ्रष्टता रूप भ्रष्ट कर्मों का फल । पुनः एक तरफ पीने हेतु जल नहीं और दूसरे तरफ दहतर की सीमा नहीं । करो और भोगो । भोगो और करो, प्यासे डूब कर मरो।

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! जब हमें (जीव को) हमारे (जीव के) अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति से सम्बन्ध विच्छेद करवा कर, जहाँ पर कि हमें (जीव को) अनवरत शान्ति और आनन्द की अनुभूति होती रही, ये अधः पतित विनाशशील शारीरिक-पारिवारिक तथा सामाजिक या साँसारिक माता-पिता अपने शरीरों में फँसा-फँसा कर कि हम (शरीर) भाई हैं, हम (शरीर) बहन हैं, हम (शरीर) चाचा हैं, हम (शरीर) चाची हैं, हम (शरीर) मामी हैं, हम (शरीर) मौसी हैं, हम (शरीर) हित हैं, हम (शरीर) नात हैं, हम (शरीर) दोस्त-मित्र, बन्धु-बान्धव, पट्टीदार,पड़ौसी आदि हैं । जिधर हम (जीव) ने देखा उधर ही सभी के सभी शरीर को ही हम-हम-हम कह-कह कर अपना-अपना परिचय दे रहे हैं, रात-दिन के अधःपतन को प्राप्त होकर अधः पतित शरीर ही मानने-जानने तथा शरीर के माध्यम से यही अपना पता वगैरह भी बताने तथा शारीरिक नाम-रूप से ही व्यवहार देने लगे । जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि परमात्मा या परमेश्वर या परमब्रह्म तथा आदि-शक्ति को भी भूलते हुए अपने अहं रूप हम जो शरीरस्थ जीव है, जिसके वगैर शरीर को न कोई पूछने वाला होगा और न तो कोई मानने-जानने वाला; इतना ही नहीं, शरीर स्वयं भी सड़-गल कर मिट्टी हो जाएगी अथवा गीध, चील, कौआ, कुक्कुर, सिआर आदि नोच-नोच कर खायेंगे अथवा जल जन्तु खा जायेंगे अथवा राख हो कर मिट्टी में ही मिल जायेगी, इसी शरीर को अपना रूप मानते हुए अपने जीव के अस्तित्त्व को भी भूल गया। जबकि आये दिन ही चारों तरफ देख रहा हूँ कि जीव द्वारा शरीर छोड़ देने पर शरीर का, जो सबसे अधिक समीपी, जानने-मानने वाला, जो सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने वाला है, प्रायः वही उसी शरीर के मुख में लुकारी (आग) भी लगा रहा है; फिर भी हम अपने को नहीं देख पाते हैं । इससे स्पष्ट हो जा रहा है कि

मेरे आँख को बन्द कर करा दिया गया है जिससे सब कुछ देखते हुए भी अनदेखे जैसे प्रयुक्त (व्यवहरित) हो रहा हूँ । मेरे बुद्धि और दिल-दिमाग पर भी जढ़ता-मूढ़ता रूपी इतनी मोटी काई (जल को ढकने वाली गन्दगी) बैठ गयी है कि सब कुछ सामने ही होते-जाते देख-सुन कर न तो आँख का पट्टा ही खुल पा रहा है और न तो दिल-दिमाग-बुद्धि की 'काई' ही हट--मिट रही है कि सूझ-बूझ होवे । धिक्कार है हम (जीव) को, कि इतना पर भी नहीं सम्भल रहा है तथा धिक्कार है मोह-माया को भी कि हमारे (जीव) के जैसे नादान, अबोध एवं निःसहाय जीव पर भी दया न करके, फँसा कर अपने आवागमन चक्कर में डाल कर पेरती रहती है । इस प्रकार माया-मोह में फँसाने वालों द्वारा फँस कर उन्हीं फँसा फँसा कर विनाश के मुख में ले जाने वाले अधः पतितों को ही माता, पिता, भाई, बहन, परिवार, पड़ोस आदि अपना हित-दायी मानते हुए उन्हीं अपने मीठे जहर रूप शत्रु मण्डली में ही फँस कर दिन बिता रहा हूँ ।

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! फँस जाने के पश्चात् अब हम (शरीर) जब तक छोटे शिशु रूप में था, तब तक माता (शरीर), पिता (शरीर), भाई, बहन, परिवार आदि शरीरों द्वारा शरीर से हम शरीर को तो बहुत ही काफी लाड़-प्यार, दुलार देते रहें क्योंकि हम जीव को ममता-मोह, दुलार-प्यार के द्वारा हम शरीर में फँसा कर शरीर ही बनाना था परन्तु हम जब शरीर बन गये, उनके ममता-मोह में फँस गये, तो जैसे जैसे हम शरीर बढ़ने लगे, वैसे-वैसे मुझे मिलने वाला लाड़-प्यार भी कम होने लगा। जो पहले हमें 'मधु' पान कराया गया था तत्पश्चात् दुग्ध पान कराया गया, अब वह भी बन्द कर-करा कर अन्न-जल दिया जाने लगा तथा अब थोड़ा भी उनके प्रतिकूल होने पर डाँट-फटकार भी मिलने लगा, क्योंकि अब वे अच्छी तरह जान-समझ गये हैं कि अब यह हम लोगों के ममता-आसक्ति रूपी मोह-जाल में जकड़ चुका है । अब यह हम शरीरों को ही अपना माता-पिता, भाई-बहन आदि समझने लगा है, अब हम लोगों को छोड़कर कहीं जा नहीं सकता है क्योंकि अब हम शरीरों को ही अपना सबसे बड़ा हितेच्छु मान बैठा है । इसलिए लाड़-प्यार, ममता-दुलार आदि का स्थान डांट-फटकार तथा कभी-कभार मार-पीट भी पड़ने लगी । अब मैं कर भी क्या सकता था क्योंकि मैं भी अब बिल्कुल शरीर बन चुका था । अब ये ही अपने दिखलायी देने लगे थे क्योंकि अभी

छोटी-मोटी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति-व्यवस्था भी इन्हीं लोगों के द्वारा अपनी-अपनी क्षमतानुसार मिलती रहती थी तथा अपना-पराया रूपी भेद-भाव भी मेरे दिल-दिमाग में भरता जा रहा था ।

परिवार के हित-मित्र और परिवार के दुश्मन-शत्रु, हमारे भी दुश्मन होते-हवाते गये, इस प्रकार दुश्मनी और मित्रता, हित और शत्रुता का भाव भी मेरे दिल-दिमाग में भरने लगा। आप पाठक बन्धुओं अब जरा आप सोचते-समझते भी चलें कि आप-हम क्या थे और क्या होते जा रहे हैं, और आगे क्या-क्या बनेंगे, उसे आगे देखा जायेगा । इस प्रकार कुछ समय बाद ऐसा होने लगा कि शारीरिक माता-पिता हमको (शरीर को) अब फुरसत या आराम-विश्राम या काम से मौका मिलने पर ही ममता-प्यार देने लगे । अब लाड़-प्यार जो मुझे छोटे शिशु रूप में मिलता था, अब बालक रूप होने पर बहुत ही कम रह गया है । अब डाँट-फटकार की मात्रा ही बढ़ती जा रही है । अब छोटी-छोटी आज्ञा भी मेरे को मिलने लगी । माता को ऐसे मानों, पिता को ऐसे मानों, भाई-बहनों को ऐसे मानों तथा बड़ों के साथ ऐसा रहो, ऐसा बोलो, इस तरह बैठो, ऐसे चलो आदि आदि शिक्षा-दीक्षा मिलने लगी। जैसे ही चार-पाँच साल हुए कि गाँव-पड़ोस के बालकों के साथ विद्यालय जाने की बात होने लगी विद्यालय में दिन भर रहना पड़ता था, कोई लाड़-प्यार, दुलार करने वाला भी नहीं क्रियाशीलता व अनुभूति को समाप्त नहीं किया जा सकता है । इसलिये बालक के अन्तर्गत रहने वाला जीव उसी शान्ति और आनन्द की अनुभूति चाहता है जो वह आत्म-शक्ति रूप ब्रह्म-शक्ति से पाता रहा और उसके प्राप्ति के बगैर जीव को शान्त और स्थिर किया ही नहीं जा सकता है । इसके साथ ही वास्तविकता भी यही है कि वह शान्ति और आनन्द जब भी मिलेगी, उसी से मिल सकती है, अन्यथा साँसारिक किसी भी व्यक्ति-वस्तु अथवा शरीर-सम्पत्ति अथवा कामिनी-काँचन से उस शान्ति और आनन्द की अनुभूति कदापि नहीं हो सकती है । बालक जो क्रमशः युवक बन चुका है, तब तक स्थिर और शान्त भी नहीं हो सकता है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! बालक जो गुजरते आयु क्रम से युवक हो गया है । शारीरिक नाम-रूपों में फँसाने, साँसारिक जितनी भी सामग्रियाँ खान-पान पहनने-ओढ़ने आदि जो कुछ भी उसे मिल चुका था, उसमें तो वह

शान्ति और आनन्द की खोज कर चुका था, परन्तु नहीं मिल पाया था। मिले भी तो कैसे जबकि उसमें है ही नहीं, तो जो चीज जहाँ होगी ही नहीं, वहाँ उसे लाख खोजा जाय तो क्या मिलने को है; कदापि नहीं। अब शारीरिक माता-पिता एवं संरक्षक आदि आप में सोचने-विचारने लगते हैं कि लड़का अब सयाना (युवा) हो गया है कहीं इसकी शादी-विवाह यदि कोई आता या कहता तो कर-करा दिया जाय। यहाँ पर एक बात विचारणीय है कि लड़के के युवा होने और विवाह कर देने के सोच-विचार का वास्तविक भाव क्या है ? क्या युवा अर्थ विवाह से ही होता है; ब्रह्मचारी, सदाचारी, वैरागी आदि नहीं हो सकता है; बिल्कुल हो सकता है और वह यदि वास्तविकता जान-समझ जाय तो इन्हीं रूपों में महापुरुष बनते उसे देर नहीं लगती। विश्वास न हो तो दृष्टि दौड़ायेंगे तो स्पष्टतः दिख सकता है कि महापुरुषों में प्रायः अस्सी से नब्बे प्रतिशत महापुरुष बालक पन व युवावस्था के ही मिलेंगे, वृद्धावस्था के बहुत ही कम हैं। वास्तविकता तो यह है कि वास्तव में जिस शान्ति और आनन्द से युक्त ब्रह्म-शक्ति रूप अविनाशी दिव्य पिता-माता से बिछुड़ाकर, भटका कर अपने शारीरिक नाम-रूपों में नाना सम्बन्ध स्थापित कर-करा कर फँसाये थे, तो जब तक शिशु और बालक था, तो लाचार था परन्तु अब तो युवा हो गया है। अब जबर्दस्ती मनमाना डाँट-फटकार मार-पीट कर अपनी बात मनवायी नहीं जा सकती है तथा एक लड़की छोड़कर अपनी आवश्यकतानुसार प्रायः हर सामग्रियाँ तो उसे उपलब्ध करा ही चुके हैं फिर भी वह स्थिर रहे, शान्त रहे, यह कैसे सोच सकते हैं क्योंकि उसी स्तर से वह भी तो गुजर चुके हैं। इतना ही नहीं ये लोग अब यह भी जान समझ चुके हैं कि वह अब इन लोगों का होकर रह भी नहीं सकता है। वह तो परम्परा के अनुसार जान रहा है कि ये लोग हमारा विवाह करायेंगे ही, प्रायः बहुसंख्यक युवक यही करेंगे कि यदि माता-पिता यह विश्वास दिला दें, कि वे इसका विवाह नहीं करेंगे या नहीं करायेंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि बहुसंख्यक युवक-युवतियाँ बेमरौवत इन लोगों को छोड़ कर स्वयं कहीं शादी-विवाह कर-करा कर कहीं रहने न लगें। यह जानकारी इन लोगों को भी है। अब प्रश्न यह उठता है कि युवक ऐसा क्यों करेंगे, तो यह वे करेंगे नहीं, बल्कि उनका प्रारब्ध और स्वभाव ऐसा ही करवा देगा। थोड़ी देर के लिए इसे पढ़ते समय युवा भाई यह सोच सकते हैं कि ऐसी बात नहीं हो सकती है,

तो उनका भी सोचना सही है कि उनकी भी आशा अभी लगी ही हुई है । वाह-वाही में तो इंकार कर ही देंगे परन्तु अपने अन्तःकरण से पूछें तो वास्तविकता का पता चल जायेगा । सवाल यह है कि सब अन्य सामग्रियाँ भोग कर देख लिए कि उसमें कोई खास आनन्द नहीं है।

'आप युवक ये महापुरुष एंव सत्पुरुष क्यों नहीं हो सकते ?' आप थोड़ा धीरज धारण कर, गम्भीरता पूर्वक सोच-समझकर स्वयं एकान्त में बैठकर निर्णय लेवें तथा स्वयं से एक बात पूछें कि आज क्या वह परमसत्ता नहीं है ? जो इन उपर्युक्त या ऐसे ही अन्य आध्यात्मिक महापुरुषों एवं तात्त्विक सत्पुरुषों जिनका नाम यहाँ छोड़ दिया गया हो या छूट गया हो, उन महापुरुषों और सत्पुरुषों जैसा भी महापुरुष और सत्पुरुष बनाने वाला वही परमसत्ता आज भी नहीं है ? आज उसमें वह शक्ति-सामर्थ्य नहीं है ? वह अवश्य है । वही सदा रहने वाला है । वही सर्व शक्तिमान है । उसके शक्ति-सत्ता में कोई भी अपना दखल नहीं जमा सकता है । वही एकमात्र परमप्रभु सबका है, सबके लिए है । वह जब जिसको जो चाहे बना दे । जितना चाहे दे दे । जहाँ चाहे वहाँ भेज दे । वह सर्व शक्तिमान है, एकमात्र वही परमप्रभु मात्र ही महापुरुषत्त्व और सत्पुरुषत्त्व प्रदाता तो है ही, मोक्षदाता भी एकमात्र वही ही है । उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं । किसी को कुछ भी बना देने का अधिकार एकमात्र परमप्रभु का है और सदा-सर्वदा परमप्रभु में ही रहेगा भी ।

स्त्रियाँ माया-मोह-ममता-वासना की मूर्ति

अब इनके लिए प्रायः स्त्री-भोग सुख ही बाकी रह गया है । हालाँकि स्त्री-सुख भोगी प्रायः नब्बे से अन्ठान्वे प्रतिशत लोग ही ऐसे मिलेंगे जो स्त्री-भोग तथा अपने पर पड़ने वाले भार (दायित्त्व) दोनों की तुलना करते हुए, पुरुष हेतु स्त्री तो एक नाहक सिर पर ली हुई विपत्ति का बोझ ही है जो मात्र परम्परा के कारण ही निबह भी रहा है । नहीं तो रात-दिन मर-मर कर यानी अथक परिश्रम करके लाता हूँ, तो परिवार में सदा ही कुछ न कुछ कमी की समस्या बनी ही रहती है । स्त्री-भोग सुख तो है क्षणिक परन्तु भार (दायित्त्व) की चिन्ता छूटती भी होगी, तो मात्र नींद ही के समय, नहीं तो नींद में भी स्वप्न में उसी के सम्बन्ध में प्रायः देखते-सुनते हुए उसमें भी परेशान ही रहते हैं । जहाँ तक पारिवारिक लोगों के तरफ हमारी दृष्टि जा रही है तो यह दिखलायी दे रहा है कि दो से पाँच प्रतिशत लोग भी ऐसे नहीं होंगे, जो स्त्री-पुत्र आदि परिवार को अशान्ति, दुःख एवं अपने पर परम्परागत पड़ा हुआ संकट न मान कर परिवार से बिल्कुल सन्तुष्ट हों । यह ध्रुव सत्य एवं मान्य बात है कि स्त्री, पुरुष के शान्ति और आनन्द तथा श्रम-फल और शरीर की सर्व श्रेष्ठ शोषिका (शोषण करने वाली) होती है परन्तु माया-मोह-ममता-वासना की साक्षात् मूर्ति होने के कारण पुरुषों को अपने में ऐसा फँसाये, फरमाये, फुसलाये, डरवाये रहती है कि पुरुष के अन्दर उसके खिलाफ यह वृत्ति ही नहीं बनने पाती है कि स्त्री, पुरुष के धन, धरम, शरीर व शान्ति और आनन्द की सर्व श्रेष्ठ शोषिका तथा पुरुष का एक तरह से खून चूसने वाली डायन-चुड़ैल तथा दूसरे तरफ से खून जलाने वाली साक्षात् चिन्ता की मूर्ति होती है । यदि स्त्री को घोरतम् साक्षात् पाप मूर्ति कहा जाय, तब भी उसके लिए यह कम ही महसूस हो रहा है । यहाँ पर एक बात और बतला दूँ , कि कोई स्त्री कभी भी किसी भी पुरुष की हो नहीं सकती है। वह मात्र स्वार्थ और अपने ख्वाहिशें (चाह) पूरी कर दें, वह स्त्री उसी की होने लगती है, अर्थात् स्त्रियाँ केवल अपने स्वार्थ एवं ख्वाहिशों की ही

होती हैं, किसी भी पति की नहीं । यह बात उतनी सत्य है जिसकी कि कोई उपमा नहीं है । इस दुनिया में पापमय प्रायः जितने भी अवगुण हों मेरे समझ से सभी अवगुणों तथा माया-मोह-ममता-वासना की भी सभी की संयुक्त रूप में साक्षात् मूर्ति ही होती है । यह माया की सीधी मूर्ति होती है जो एक मात्र भगवान्, जो महामाया का भी मालिक (पति) है, से ही लजाती, भयभीत होती है अन्यथा किसी भी अन्य को ये कुछ भी नहीं समझती हैं । एक मात्र भगवान् ही हैं जो इन्हें जैसे चाहते हैं, नचाते रहते हैं । एक मात्र भगवान् पर ही इसका कुछ बश नहीं चल पाता है । हो सकता है कि स्त्रियों को ये बातें बुरी लगें तथा वे सोचें कि हम स्त्रियों से विक्षुब्ध हैं तो ऐसी बात कदापि नहीं है । यहाँ पर जो कुछ भी कहा गया है, सत्यता के लिहाज से, सत्यता को देखते हुए कहा गया है । हो सकता है कि हमारे में यह कमी हो कि स्त्रियों का सही पर्दाफास कर दिया गया है । तो इसमें मेरा कोई दोष क्या हो सकता है । यदि मुझे दोष लगे भी तो मैं सत्य के लिए उसे सहर्ष झेलने को तैयार हूँ । सत्य हेतु दुनिया का कुछ भी, चाहे जितना भी विरोध, संघर्ष, कष्ट आयेगा सबको परम प्रभु की कृपा से सहर्ष सहन करूँगा तथा प्रभु जी से निवेदन एक ही रहेगा कि अपनाये रहे ।

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह के धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुःखद माया रूपी नारी ।।
अरण्य काण्ड ४३ दो०

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुःख खानी ।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जीयँ जानि ।।
अरण्य काण्ड ४४ दो०

विधिहु न नारी हृदय गति जानी ।
सकल कपट अघ अवगुण खानी ।।
अयोध्या काण्ड २६१/४

दुनिया दोहरी रीति की

सद्भावी सत्यान्वेषी युवक बन्धुओं ! आप युवा बन्धुओं की यह दलील (तर्क) भी ठीक ही है कि सभी सामाग्रियाँ भोग कर देखा जा चुका है परन्तु किसी भी विषय वस्तु में स्थिर शान्ति और आनन्द की अनुभूति नहीं हो रही है, हो न हो लड़की से; जब विवाह होगा, तब ही वास्तव में स्थिर शान्ति और आनन्द की अनुभूति होगी क्योंकि स्त्री-भोग में यदि स्थिर शान्ति और आनन्द नहीं होता, तो समाज का अधिसंख्यक वर्ग स्त्री-भोग हेतु विवाह ही क्यों करता ? दूसरी ओर सबसे बड़ी महत्त्व की दलील यह है कि संसार में कुछ करने हेतु तथा सुखमय जीवन हेतु एक सहयोगिणी, एवं एक सहगामिनी की अनिवार्य आवश्यकता है। प्रायः चारों तरफ देखने पर भी यही दिखलायी दे रहा है । युवक बन्धुओं की यह दलील अपने आप में महत्त्वपूर्ण है तथा ठीक लगता भी है क्योंकि कोई पुरुष अकेले पूर्ण नहीं होता, बल्कि स्त्री-पुरुष का जोड़ा ही एक पूर्ण शरीर होता है और जब तक मनुष्य पूर्ण नहीं बन जाता, तब तक समाज में न तो ठीक से कुछ कर ही सकता है और न भोग में ही अपेक्षित सुख की प्राप्ति कर सकता है । संसार में रहते, कर्म करते और भोग भोगते हुए सुखमय जीवन-यापन करना है तो कर्म और भोग में एक स्थाई सहारा आवश्यक होता है । दुनिया दो का ही संयुक्त रूप है जैसे-- सत्य-असत्य, अच्छाई-बुराई, दिन-रात, ऊपर-नीचे, सुबह-शाम, समुद्र-पहाड़, आकाश-पाताल, माता-पिता, स्त्री-पुरुष, पति-पत्नि, लड़का-लड़की, बालक-बालिका, प्रकाश-अंधेरा, जगना-सोना, उठना-बैठना, करम-भोग, ज्ञान-ध्यान, उत्तम-अधम, उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, चढ़ना-उतरना, सुनना-देखना, जानना-मानना, खाना-पीना, जीना-मरना, आना-जाना, स्वामी-सेवक, भगवान्-भक्त, प्रेमी-प्रेमिका, धरम-करम, योग-भोग, स्वर्ग-नर्क, मुक्ति-भुक्ति, मेल-मिलाप, मित्र-शत्रु, सहयोगी-विरोधी, मान-अपमान, इज्जत-बेइज्जत, ईमान-बेईमान, ज्ञानी-अज्ञानी, चेतन-जड़, गुण-दोष, शान्ति-अशान्ति, हर्ष-शोक, सुख-दुःख दीक्षा-शिक्षा, मन्त्र-तन्त्र, धार्मिक-साँसारिक, परमार्थ-स्वार्थ, कर्त्ता-भोक्ता, सत्ता-शक्ति, कर्त्तव्य-अधिकार, पाना-खोना, देना-लेना,

अविनाशी-विनाशी, चर-अचर, पढ़ना-लिखना, पढ़ाना-लिखाना, गुरू-शिष्य आदि आदि । इस प्रकार प्रायः दो के मेल-मिलाप से ही दुनिया की सार्थकता भी है । यहाँ पर संयोग-वियोग, अनुकूल-प्रतिकूल, मैं-मैं, तूँ-तूँ, मेरा-तेरा, अपना--पराया, पक्ष-विपक्ष, परमार्थी-स्वार्थी, धार्मिक-अधार्मिक, योगी-भोगी आदि किसी भी दो में से एक को निकाल दिया जाए तो दूसरा अपने आप में महत्त्वहीन हो जाएगा । असत्य के बगैर सत्य का, अधर्म के बगैर धर्म का, अन्याय के बगैर न्याय का, अनीति के बगैर नीति का, वियोग के बगैर संयोग का, जड़ के बगैर चेतन का, दोष के बगैर गुण का, स्त्री के बगैर पुरुष का, अज्ञान के बगैर ज्ञान का महत्त्व ही नहीं हो पायेगा फिर दुनिया रह ही क्या जाएगी अर्थात् कुछ नहीं । इसलिए सुखमय जीवन यापन हेतु संसार में पुरुष के लिए स्त्री तथा करम के लिए भोग को आवश्यक जानकर ही रचना हुई है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी युवक बन्धुओं ! पिछले पैरा की बातों को देखते हुए पुरुष के लिए स्त्री तथा स्त्री के लिए पुरुष की आवश्यकता अवश्य महशूस हो रही है । इसको देखते हुए आप बन्धुओं को विवाह अवश्य करना चाहिए क्योंकि दुनिया में आये हैं, तो दुनियादारी कीजिए, दुनियादारी के लिए दो का होना-रहना भी आवश्यक है । भगवान् ने दुनिया को अपने खेल-आनन्द स्वरूप बनाया ही है, जिसमें हम-आप खेल के खिलौनों के समान हैं । दुनिया में आकर दुनियादारी अवश्य कीजिए, दुनियादारी हेतु दो का मेल तथा दो के मेल हेतु विवाह भी आवश्यक ही है । ऐसा ही सोच-समझ कर माता-पिता भी अपना बोझ हल्का करना भी चाहते हैं क्योंकि ये जो थे, आप को भी बना ही दिये। ब्रह्ममय जीवधारी मानव का ब्रह्म-शक्ति से सम्बन्ध विच्छेद कर-करा कर माता-पिता आदि नाना प्रकार के सम्बन्ध कायम कर-करा कर लाड़-प्यार, ममता-दुलार सब कुछ दे-लेकर जब हम-आप को ब्रह्म-शक्ति से बिछुड़ा-भटका कर शरीरों (माता-पिता) में अटका-फँसा कर जब पूरा-पूरा शारीरिक-पारिवारिक एवं साँसारिक रूप में जब आप को बना दिये हैं, तब, अब आप उनके बोझ हो गये हैं। आप कभी भी सुन सकते हैं कि माता-पिता पर आप बोझ हैं। चाहे आप युवक हों या युवती अपने माता-पिता के बोझ हो गये हैं। अब वे आपका भार बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं । अब आप इसकी अच्छी तरह से परीक्षा कर सकते हैं । कोई ऐसा साँसारिक माता-पिता नहीं हैं जिनको अपना युवक पुत्र और युवति पुत्री उन पर भार न हों

अर्थात् वे अपने पर भार महसूस न करते हों। इनका भार दो ही सूरत में हल्का हो पायेगा। वह पहले और सबसे महत्त्व वाला है कि अब आप कमाकर उन्हें कुछ (रूपया-पैसा) दें, क्योंकि ये लोग (माता-पिता आदि) जो आपको लाड़-प्यार दिये थे, अपने में फँसाकर जो खर्च-आदि किये थे; तो ये पागल नहीं थे, इनको कुत्ता नहीं काटे हुए था कि आप पर इस तरह से खर्च कर रहे थे, प्यार दे रहे थे। इसलिए नहीं सब दे रहे थे कि माता-पिता थे, बल्कि प्रत्येक कार्य के पीछे कोई रहस्य छुपा था, कोई राज था जिसको ये अपने अन्दर सजो (छिपाये रख) कर रखे थे।

ये (माता-पिता) ब्रह्म-शक्ति से हमारा-आपका जो सम्बन्ध कटवा कर इतना बड़ा घोरतम कुकर्म और पाप कुछ सोच-समझ कर ही करवाये तथा नाना उपाय-यतन- खर्च-लाड़-प्यार देकर अपने में फँसा पाये थे। इन सभी बातों के पीछे जो रहस्य था, वह यह नहीं था कि आप लाचार हैं और ये माता-पिता हैं बल्कि महत्त्वपूर्ण रहस्य यह था कि आप से इनको कुछ चाह थी और उसका समय भी अब आ गया है। आप युवक हो गये हैं। अब कमाइये और इनको सब कुछ जो लिये-पाये हैं, भरपाई कीजिये। ये जो लाड़-प्यार दिये थे, उसके बदले सेवा-श्रुषुषा कीजिये। ये सब आप पर ऋण हो गया है, इस माता-पिता के ऋण से उऋण होइये। ये माता-पिता नहीं थे आपके ऋण दाता थे। आप बचपन में जो ऋण खाये-पिये हैं, उसे भरिये। चलिए नौकरी कीजिये, कमाइये और लाकर इन्हें खिलाइये, लाकर इन्हें दीजिये; तब तो आप सही पुत्र या परिवार के ठीक सदस्य होंगे। यदि आप नहीं कमाइयेगा तो परिवार में अब आप को खाना-पीना भी नहीं मिलेगा, साथ ही साथ उसके स्थान पर अब 'ताना' मिलेगा कि आलसी हो गया है, कमाता-धमाता कुछ नहीं, आकर दोनों टाइम (समय) खा-पी लेता है। जिन्दगी भर इसको हम ही लोग खिलायेंगे-पिलायेंगे। फिर यदि आप कोई नौकरी नहीं कर रहे हैं या कोई काम नहीं कर रहे हैं तो आपको नाना प्रकार की उपाधियाँ बिना पढ़े-लिखे, बिना परिश्रम किए ही मिलने लगेंगी। ये उपाधियाँ क्या हैं ? तू--- 'आवारा' हो गया है। 'लोफर' हो गया है। 'आलसी' हो गया है। 'निकम्मा' हो गया है। लीजिए बटोरिये उपाधियों को। ऐसे ही अगणित उपाधियाँ आये दिन मिलने लगती हैं। यदि आप कुछ दिन भी बिना कुछ किये परिवार में पड़े रहे, तो आप से कोई ठीक से बोलने वाला तक नहीं मिलेगा।

बन्धुओं अब आप परिवार पर वह भार हो गये हैं कि परिवार यहाँ तक सोचने पर उतारू हो जाता है कि कहीं जाता तो कम से कम पेट भर तो कमाता। नहीं हम लोगों को पूछता तो कम से कम अपना तो काम चलाता। आप यदि ऐसी परिस्थिति में हों तो देखिये कि अब न आप इन लोगों के बेटा-बेटी (पुत्र-पुत्री) रहे और न ये लोग आपके माता-पिता यदि आप कमाने-धमाने लगे हैं तो कुछ दिन रूपया-पैसा देना बन्द करके देख लीजिये कि कौन कितना आप का है ।

भार उतारना

सद्भावी युवा बन्धुओं ! ये (शारीरिक) माता-पिता, संरक्षक आदि आपका शादी-विवाह इसलिए नहीं कर रहे हैं कि बबुआ (पुत्र,भाई आदि) को स्त्री भोग का सुख मिले या स्थिर शान्ति और आनन्द मिले, बल्कि ये इसलिए करना-कराना चाहते हैं कि आप इनके सिर पर भार हो गये हैं, बोझ हो गये हैं, तो आप से सीधे कैसे कहें कि आप हमारे सिर पर भार हो गये हैं, कहीं चले जाइये, कुछ कमा कर लाइये । इसी बात को पूरा करने के लिए ये ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न कर देना चाहते हैं कि आपको कहीं कुछ करना-धरना ही पड़ेगा । कुछ कमा-धमा कर लाना ही पड़ेगा । क्योंकि जब शादी-विवाह कर दिया जाएगा, तो वह खुद ऐसी समस्याएँ उत्पन्न करेगी कि इनको कमाने-धमाने के लिए मजबूर होना ही पड़ेगा। परिवार तो सीधे जवाब दे देगा कि "कौन-कौन समस्या आप लोग के हल करीं, तह लोगन के खाइल पीयल पूरा करीं, कि कपड़ो-लता पूरा करीं, कि साबुन-सोडा पूरा करीं, कि का-का करीं; कहीं कुछ कमाये-धमाये के हइये नइखे, त कहाँ से इ कुलि होई । अब तू आ तोहार ई परिवार हमर बस के नइखे । ले जा जहाँ मन करे, हाथ तूही न पकड़ ले बाड़ । त हाथ पकड़ ले के लाज निभाव । हमन का-का करीं।" आपको कमाने हेतु मजबूर होना ही पड़ेगा ।

सद्भावी सत्यान्वेषी युवक बन्धुओं ! यह कदापि आपके शान्ति और आनन्द तथा सहयोग, सह धर्म के लिए शादी-विवाह नहीं करते हैं बल्कि अपना भार उतारते हैं । यह चाहे देहाती परिवार के हों या शहरी, अशिक्षित परिवार वाले हों या शिक्षित, गरीब परिवार वाले हों या धनी। प्रायः सभी के अन्दर अब एक मात्र यही बात रह गई है, अपना भार या बोझ हल्का करना तथा आपको लगा-फँसाकर कमाई कराने, नौकरी कराने आदि । ये (माता-पिता, संरक्षक आदि) अच्छी तरह

जानते हैं कि परिवार एक आपत्ति-विपत्ति है, परिवार अशान्ति, अस्थिरता, समस्याओं, शोक, कष्ट, परेशानियों आदि का घर है। फिर भी आप को फँसाते हैं ये जानते हैं कि परिवार माया जाल है-कर्म बन्धन है फिर भी आप को मायाजाल में फँसाते हैं- कर्म बन्धन में बाँधते हैं। आप के जीव-जीवन के मंजिल रूप मुक्ति-अमरता परम कल्याण से इनको कोई-कुछ भी मतलब नहीं है। अब आप को स्वतः ही सोचना-समझना चाहिए कि ये लोग आप के कितने हितेच्छु और कितने पतन-विनाश कारक हैं।

परिवार बसाकर कोई आदमी शान्त नहीं रह सकता है, स्थिर नहीं रह सकता है, सुख से नहीं रह सकता है, स्वतन्त्रता एवं स्वछन्दता समाप्त हो जाती है,पराधीनता एवं पैरों में मोह की डण्डा-बेड़ी तथा हाथ में ममता-आसक्ति रूपी हथकड़ी लग जाती है, जिससे छूटना जन्म-जन्मान्तर तक के लिए भी कठिन है, लोहे की हथकड़ी तो खुल जाती है परन्तु मोह-ममता वाली करोड़ों जन्मों तक खुलनी आसान नहीं है। परिवार से सुख-चैन छिन जाता है, नाना प्रकार की चिन्ताएँ रात-दिन जलाने लगती हैं, समस्याएँ एक न एक दिन सिर पर चढ़ी ही रहती हैं, अथक परिश्रम करके लाइये, तब भी ठीक से भरण-पोषण मुश्किल हो जाता है, परिवार के ठीक से भरण-पोषण हेतु चोरी,लूट, जोर-जुल्म, अत्याचार तथा सभी भ्रष्टाचारों का मूलरूप घूसखोरी आदि सब कुकर्म-पाप राशि बटोर-बटोर कर तो किसी तरह पारिवारिक भरण-पोषण हो पाता है अर्थात् परिवार सुख के आड़ में सभी कुकर्मों सभी आपत्तियों-विपत्तियों तथा पाप राशि बटोरने वाली महान् विपत्ति ही है। फिर भी अनुभव करते हुए भी परिवार वाले अपने युवक-युवतियों को फँसा देते हैं। क्योंकि अब यह ऐसा करने के लिए मजबूर है। आपका भार अब ये सहन भी नहीं कर सकते हैं। अपनी पारिवारिक अन्दरूनी परेशानियों एवं कष्टों को आप से लज्जा एवं संकोच वश कह भी नहीं सकते हैं। साथ ही यह भी डर है कि असलियत समझाने पर यह उल्टे जवाब न दे दें, कि अपने तो भोग चुके और भोग रहे हैं तथा हमारे लिए आपत्ति-विपत्ति की खान बतला रहे हैं। अस्थिरता, अशान्ति का घर कह रहे हैं तथा साथ ही यह भी भय है कि परिवार छोड़-छाड़ कर कहीं साधू-सन्यासी न हो जाय। घर छोड़ कर कहीं चला न जाय आदि नाना प्रकार की चिन्ताओं से ग्रसित ये कि कर्तव्य विमूढ़

हो गये होते हैं । हर तरह से सोच-विचार तथा धन के लोभ के कारण कि कमाकर लाकर कुछ देगा - युवक का विवाह करने-कराने हेतु मजबूर होते हैं।

अतः यहाँ पर युवक-युवतियों का सब कुछ जानना-देखना, सोचना एवं समझना काम है कि वे भी ऐसे उपरोक्त एवं पूर्वोक्त परिवारों के रूप में दुनिया में दुनियादारी करेंगे कि किसी आध्यात्मिक महापुरुष तथा तात्त्विक सत्पुरुष या परमपुरुष रूप भगवदवतार के शरणागत होकर ब्रह्मानन्द तथा परम-शान्ति और परम आनन्द की अनुभूति और बोध प्राप्त करते हुए निर्दोष, मुक्त और अमर जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्म पद तथा परम पद रूप परमधाम के सदा भगवद् पार्षद बनेंगे तथा संसार में भी महापुरुष के रूप में शास्त्रों और मन्दिरों में रहेंगे ?

सद्भावी सत्यान्वेषी युवक बन्धुओं ! अब आप युवक बन्धुओं पर यह निर्णय लेना है कि आप को माया-मोहासक्त विनाशशील साँसारिक गृहस्थ बनना है या इनसे परे माया-मोह रहित 'शान्ति और आनन्द की अनुभूति एवं परमशान्ति एवं परमानन्द तथा "मुक्ति और अमरता से युक्त" अविनाशी एवं अमरता के बोध रूप ब्रह्ममय आध्यात्मिक-महापुरुष एवं तात्त्विक परमपुरुष रूप भगवदवतार के पार्षद रूप सत्पुरुष यह दोनों मार्ग अपने-अपने गुण-दोषों के साथ आपके समक्ष हैं । यह आप पर है कि दोनों में से किसका चुनाव आप कर रहे हैं । तो यहाँ पर यह भी जान लें, कि महापुरुष एवं सत्पुरुष वाली जानकारियाँ आगे दी जाएगी। यहाँ पर माया मोहासक्त विनाशी-साँसारिक गृहस्थ की चर्चा होने चल रही है। अब आप जानें और आपका काम जानें ।

युवक-युवती समान

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! युवक बन्धुओं ! विवाह हेतु यह विशेष महत्व की बात है कि युवक-युवती प्रायः समान आयु, समान आहार-विहार, समान रूप यौवन, समान स्थिति-परिस्थिति एवं समान शिक्षा-दीक्षा वाले हों, तो सबसे अच्छा परन्तु यदि समान किसी कठिनाईवश न मिल पाते हों, तो यह यादगारी अत्यन्त ही महत्त्व की होनी-रहनी चाहिए कि युवक-युवती से हर मामले में थोड़ा-बहुत बीस यानी श्रेष्ठ हो, तब ही परिवार पारिवारिक लाभ प्राप्त कर सकता है । यह भी साथ ही स्मरण रखने एवं महत्त्व देने की बात है कि युवती

युवक से श्रेष्ठ कभी भी और किसी भी परिस्थिति में न रहे, अन्यथा वह परिवार सदा ही कष्टों में रहेगा। यह रही युवक युवती के विवाह के पूर्व के देख-रेख एवं जांच-पड़ताल की बात।

विवाह हेतु युवती के पिता का दायित्व

सद्भावी गृहस्थ बन्धुओं ! विवाह को तथा पारिवारिक सम्बन्ध को सुचारू रूप से निर्वाह हेतु युवती के पिता अथवा संरक्षक पर बहुत बड़ा दायित्व होता है कि वह युवती के समकक्ष बल्कि थोड़ा श्रेष्ठ ही युवक एवं परिवार को अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल कर-करा कर ही विवाह सम्बन्धी वार्त्ता चलावें। इस बात का सदा ही ख्याल रहे कि युवक का परिवार युवती से निम्न या गरीब या कमजोर आदि किसी भी मामले में कम न हो, अन्यथा युवती को कष्ट होगा, जिसका अधिकतर दायित्व पिता अथवा संरक्षक का ही होता है, इसलिए युवती के कष्टों के दोष के भागी वही होंगे। इसलिए काफी सूझ-बूझ एवं खोज-खबर, जाँच-पड़ताल के बाद ही समकक्ष होने-मिलने या श्रेष्ठतर मिलने पर ही शादी-विवाह तय किया जाए। जिससे लड़की (युवती) जहाँ जाय, वहाँ कम से कम जिस सुख-भोग के लिए वह पारिवारिक बन्धन में पड़ रही है, वह सुख-भोग तो उसे ठीक-ठीक मिल सके। वह कष्ट में न पड़ने पावे। आगे चलकर करोड़ों-करोड़ों बार यमराज के मृत्यु रूप दुःसह यातनाओं से तो गुजरना ही गुजरना है, गुजरना ही है; कोई माता-पिता बचा नहीं सकते।

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! विवाह हेतु युवती के पिता को ही सबसे बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी होती हैं तथा युवती के वर के साथ विदाई होने तक विशेष दायित्व का वहन करना पड़ता है। युवती परिवार के लिए सिर दर्द बन जाती है कि उसकी शादी उसके योग्य वर खोज कर जितना जल्दी शादी कर दिया जाय, उतना ही जल्दी पिता (युवती के पिता) का भार हल्का मात्र ही नहीं हो जाता, बल्कि परिवार, गाँव, समाज का भी भार हल्का हो जाए, क्योंकि युवती तो मात्र अपने पिता के ही सिर का भार एवं दर्द नहीं होती है बल्कि घर-परिवार, गाँव, समाज के भी सिर का भार एवं सिर का दर्द होती है; जिसमें पिता प्रधान है।

विवाह पारिवारिक एवं साँसारिक जीवन में एक महत्वपूर्ण साँस्कारिक पद्धति है जिसके अन्तर्गत एक युवक-युवती का जोड़ा परिणय-पद्धति से वर-वधू रूप होता हुआ पति-पत्नी के रूप में पहुँचता है। विवाह कोई युवक-युवती का मनमाना सम्बन्ध नहीं होता है, बल्कि एक विशुद्ध ही साँस्कारिक-पद्धति का नाम ही विवाह है; जिसके अन्तर्गत युवक-युवती दोनों एक-दूसरे के परिणय-सूत्र में बँध कर शारीरिक, पारिवारिक एवं सामाजिक या साँसारिक रूप में आ जाते हैं। विवाह-पद्धति के अन्तर्गत कुछ साँस्कारिक रश्में होती हैं जिसको प्रायः विवाह के पूर्व पूरा करना होता है। हालाँकि ये रश्में भी विवाह-पद्धति के अन्तर्गत ही आती हैं। अब इसे देखें।

वराच्छा

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! वराच्छा विवाह की पहली साँस्कारिक पद्धति है जिसके अन्तर्गत युवती के योग्य युवक की खोज प्रायः हर स्तर पर समकक्ष का किया जाता है और अगुवा (दोनों के बीच मेल-सम्बन्ध कराने वाला) के माध्यम से जब युवक का पता लग जाता है, तब पंडित व ठाकुर जाते हैं देखने के लिए कि होने वाले वर-वधू की जोड़ी मेल-मिलाप के योग्य है कि नहीं अर्थात् युवती के योग्य युवक है या नहीं। पण्डित व ठाकुर (नाई) के द्वारा जब योग्यता यानी समकक्षता का समर्थन मिल जाता है तत्पश्चात् पिता-भाई आदि प्रमुख व्यक्ति अगुवा, पण्डित, ठाकुर के साथ पांच-सात या क्षमतानुसार कम-वेश युवक के यहाँ जाते हैं तथा जाँच-पड़ताल के पश्चात् यदि युवक युवती के योग्य मिल गया, तब विवाह की पहली रश्म पूरी की जाती है, जिसका नाम "वराच्छा" यानी युवति के समकक्ष या श्रेष्ठ अच्छा युवक मिल गया है, वधू के लिए वर अच्छा है। इसी रश्म में ही अगली दूसरी रश्म तिलक की तथा विवाह की तिथि वगैरह ज्योतिष गणना के आधार पर "लगन पत्रिका" की दो कापी बनती है, जिन पर दोनों पक्ष के मालिकों को एक-दूसरे द्वारा हस्ताक्षरित एक-एक कापी (प्रति) मिल जाया करती है। इस लगन पत्रिका का भाव यह होता है कि दोनों पक्ष अगुवा तथा पण्डित के समक्ष अपने-अपने बचनों के माध्यम से विवाह हेतु बँध जाते हैं कि इस लगन पत्रिका की तिथि के पश्चात् वर पक्ष कोई दूसरे से रिस्ता न जोड़ने लगे तथा वधू-पक्ष भी बिना कोई कारण बताये दूसरा रिस्ता या सम्बन्ध न कायम करने लगे।

लगन पत्रिका इसी का सबूत होता है ।

तिलक

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! विवाह पद्धति में दूसरे क्रम में तिलक रस्म होती है । इस तिलक के रस्म के अन्तर्गत युवती यानी वधु पक्ष के दस-बीस अथवा क्षमतानुसार अधिक-कम भी प्रायः जितने भी समीपी हित-नात व गाँव-पड़ोस के महत्वपूर्ण व्यक्ति सम्पर्की होते हैं, प्रायः सभी ही इस (तिलक) वाले वर पक्ष के यहाँ बर्तन आदि सेवा-सहयोग देने तथा इन समीपी बन्धुओं को भी जाँच-पड़ताल का शुभ अवसर देकर बाकी युवक-युवती के मेल यानी वर-वधू के समकक्षता का राय-विचार लेना तथा साथ ही साथ कन्या के भाई द्वारा वर को टिका (तिलक) ललाट पर देना होता है, जिसका अर्थ और भाव दोनों ही होता है कि अब वर-वधू का सम्बन्ध स्थिर हो गया यानी टिक गया । अब परिस्थिति विशेष के अतिरिक्त यह सम्बन्ध, जो अब वधू पक्ष द्वारा वर पक्ष को टिका देकर भाव स्थिति से विश्वास दिया कि हम लोग अब टिका दे दिये यानी अपने स्थिरता का भाव आप को दे दिया, अब आप विवाह हेतु बारात लेकर हमारे (वधू पक्ष के) यहाँ सहर्ष अपनी क्षमतानुसार अपने हेतु खुशहाली के साधनों (बाजे-गाजे) के साथ, हाथी-घोड़े आदि के साथ आ सकते हैं, जितने लोग एवं साधन आपके साथ हमारे यहाँ आयेंगे, हम लोग भी सहर्ष खुशी-खुशी आप लोगों का सेवा-स्वागत अपने क्षमतानुसार करेंगे।

तिलक का वास्तविक रूप

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! "तिलक" का अर्थ -भाव होता है युवती अपने पति (युवक) के साथ टिक गयी अथवा ठहर चुकी है । अब ये दोनों ही पूरी जिन्दगी एक-दूसरे के अपनत्त्व में एकत्त्व भाव में चाहे दुःखद जो भी स्थिति हो बने रहेंगे । सर्वप्रथम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही आत्मा-ईश्वर-ब्रह्म सहित ही परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप अलम्-गॉड में ही स्थित था । उन्हीं में से ही सर्वप्रथम आत्म ज्योति रूपा आदि शक्ति-शिव शक्ति-ब्रह्म शक्ति तत्पश्चात् क्रमशः ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई और जीव उसी में भरम-भटक कर 'जनमत-मरत दुःसह दुःख होई' नामक यातनाओं से मोक्ष पर्यन्त गुजरते रहा। उसी दुःसह

यातना से 'मुक्ति' हेतु जीव भगवान् से पुकार करने लगा जिससे मानव योनि मिली कि भगवत् प्राप्त होकर शरणागत होकर एकत्त्व बोध रूप में प्रभु के यहाँ सदा-सर्वदा के लिए 'टिक' -ठहर जाना था। जो टिक गया वह पहचान रूप अपने सिर-माथे-ललाट पर दोनों आँखों के मध्य कि हम जान-देखकर ठहरे हैं -- टिका करने लगे। उसी का एक श्रेणी नीचे वाला ब्रह्म-आत्मा वाला और सबसे निचले श्रेणी शरीर वाला तिलक हुआ। एक साँस्कारिक 'टिका' है जिसका वास्तव में प्रयोग जीव का आत्मा से मिलन तथा उस मिलन का टिकाऊ (स्थिर) बनाये रखने वाली बात थी, जिसमें कि गर्भस्थ शिशुस्थ जीव स्थिर शान्ति और आनन्दानुभूति के साथ ही साथ ब्रह्म-ज्योति अथवा आत्म-ज्योति अथवा दिव्य ज्योति रूप ब्रह्म का साक्षात्कार करता रहता है, जहाँ शिशु को शरीर भाव न होकर ब्रह्म भाव रहता था, जिससे जीव स्थिर शान्ति के साथ ही साथ निरन्तर अखण्ड वृत्ति में रहता हुआ हमेशा ही आनन्द विभोर रहता है। उसी मूलाधार स्थित जीव का भ्रूमध्य क्षेत्र स्थित आज्ञा-चक्र में मिलन तथा स्थिर यानी टिकाऊ मिलन बना रहे, इसके लिए अखण्ड वृत्ति (अजपा-जप) की क्रिया अनवरत होती रहती थी, उसी टिकने वाली जीव भाव स्थिति को बाद में पूजा-पाठ, अर्चना-उपासना करने वाले पुजारी उपासक तिलक-चन्दन उसी आज्ञा-चक्र पर बाह्य ललाट पर देने या टिका करने लगे। जीव का ब्रह्ममय भाव में मूलाधार-चक्र से आकर आज्ञा-चक्र में टिकना, जीव हेतु अति महत्वपूर्ण भाव-स्थिति थी, जो उस ब्रह्ममय शरीर को महान् यानी आध्यात्मिक महात्मा, योगी-सिद्ध, महापुरुष आदि बनाती रहती थी और आज भी जो शरीरस्थ जीव अपने शरीर-सम्पत्तिमय से हटकर ब्रह्म साक्षात्कार करता हुआ मूलाधार चक्र से ऊर्ध्वमुखी गति-वृत्ति से आज्ञा-चक्र में अपने को टिका दे तो उसे योगी-यति, सिद्ध-महात्मा तथा महापुरुष बनते देर नहीं, परन्तु मूलाधार स्थित जीव को आज्ञा-चक्र स्थित ब्रह्म-ज्योति के साथ टिकाता नहीं है; उसी का सकल रूप यह युवती के शरीर को उसके मूल आधार रूप जन्म-स्थान से लाकर युवक के यही पति (युवक शरीर) के आज्ञा चक्र में टिकाने की व्यवस्था ही 'तिलक' हो गया है।

विवाह संस्कार

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! विवाह परम्परागत पैतृक मान्यताओं के अनुसार सहकर्म एवं सहभोग हेतु युवक-युवती का साँसारिक सम्बन्ध है । पुनः विवाह की परिभाषा एक दूसरे शब्दों में भी देखें -- "विवाह परम्परागत पारिवारिक, सामाजिक रूप साँसारिक व्यवस्था को कायम रखने एवं विकसित करने हेतु युवक-युवती का साँस्कारिक सम्बन्ध है, जो सम्बन्धित पति-पत्नि को सह-कर्म एवं सह-भोग हेतु अग्रसारित करता है ।"

सद्भावी बन्धुओं ! वराच्छा और तिलक ही रश्म पूरी होने के पश्चात् अब वर-पक्ष के द्वारा प्रायः समस्त हित-मित्र, सगा-सम्बन्धी, गाँव-पड़ौस, पवनी (सेवक वर्ग) आदि के साथ मय बाजे-गाजे, नाच-तमाशा के साथ सज-धज कर वर के साथ बारात वधू के यहाँ ले जायी जाती है । उधर वधू-पक्ष के यहाँ वर-सहित बारात की अच्छी से अच्छी स्वागत-सेवा हेतु नाना प्रकार के मिष्ठान्न-पकवानों एवं अन्य स्वागत करने आदि की तैयारियाँ भी पूरे हर्ष के साथ अपने-अपने क्षमता भर की जाती हैं। बारात वर के साथ जैसे ही वधू पक्ष के यहाँ पहुँचती है, वधू-पक्ष के लोग वर सहित बारात का सहर्ष स्वागत करने हेतु गाँव से बाहर कुछ दूर जिधर से बारात गाँव में प्रवेश करनी होती है, उधर आकर बारात का स्वागत करते हुए अपने दरवाजे पर ले जाते हैं । इस प्रकार वर-सहित बारात अपने हाथी-घोड़े, बाजे-गाजे, नाना प्रकार के पड़ाके-फुलझर्रियों आदि के साथ वधू पक्ष के दरवाजे पर पहुँच जाती है, जहाँ पर कि मकान के मुख्य दरवाजे पर एक छोटा सा मण्डप बना होता है, जिसमें पूजोपचार सम्बन्धी प्रायः सभी मांगलिक सामग्रियाँ मय कलश आदि के साथ पूरे सजावट के साथ पहले से ही तैयार रखी रहती हैं; जहाँ पर कन्या का पिता वर को भगवान् विष्णु का रूप मानता हुआ आचार्य पण्डित द्वारा साँस्कृतिक रूप से मन्त्रों के साथ उन मांगलिक सामग्रियों से वर की पूजा-अर्चना करते हुए चरण-स्पर्श कर प्रणाम करते हैं, जिस रश्म को "द्वार पूजा" कहा जाता है । इसके तुरन्त पश्चात् ही वर-सहित पूरे बारात को विधिवत् सेवा-सत्कार के रूप में जलपान कराया जाता है। इस प्रकार वधू पक्ष के यहाँ की पहली रश्म पूरी होती है । इसके पश्चात् दूसरे रश्म

"कन्या-निरीक्षण" की तैयारी कुछ समय पश्चात् ही प्रारम्भ हो जाती है । विवाह प्रक्रिया के अन्तर्गत यह रश्म भी अपना एक अलग ही महत्त्व रखती है ।

'वर' विष्णु कदापि नहीं

सद्‌भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! दुनिया में क्या ही यह एक अजीब विडम्बना देखने-सुनने को मिल रही है कि हँसी भी आती है और भ्रमपूर्ण फैले हुए मान्यताओं एवं परम्पराओं को देख कर तरस भी आता है कि दुनिया वाले भगवान् द्वारा मिली हुई बुद्धि को 'ताक' पर रख कर मनमाने आचरण-व्यवहार करने-कराने लगते हैं, जिसमें फँस-फँसाकर बर्बाद होते हुए विनाश के तरफ तेजी से बढ़ते जा रहे हैं, तब भी जानते, देखते तथा समझते-बूझते हुए भी सुधरने की कोशिश नहीं कर-करा रहे हैं । हाय रे दुनिया वालों ! शैतान ने तुम लोगों की मति-गति को क्या-क्या कर डाला है कि अपनी हो रही बर्बादी तथा आने वाले विनाश को नहीं देख पा रहे हो । अरे जढ़ी एवं मूढ़ों ! अब से भी तो चेत कि तुम किधर को जा रहे हो।

सद्‌भावी सत्यान्वेषी गृहासक्त बन्धुओं ! भगवान् द्वारा दिये गये विवेक-बुद्धि में से नहीं पूरा-पूरा तो कम से कम थोड़ा भी तो याद करके उस विवेक-बुद्धि को काम में लगाओ, यानी अपने जीवन के कदम को आगे बढ़ाते हुए थोड़ा भी तो विवेक-बुद्धि को स्मरण रखते हुए सूझ-बूझ से कदम आगे रखो, ताकि तेरा अगला कदम तुझे आबाद के तरफ ले जा रहा है या बर्बाद के तरफ । तेरा जीवन उत्थानपरक है अथवा पतनोन्मुखी, इतना तो कम से कम देखने की कोशिश करो । ये शारीरिक-पारिवारिक-साँसारिक जन जो खुद अधःपतन रूप अधः पतित बन चुके हैं, खुशी-खुशी आप को भी वही (अधःपतित ही) बनाने पर तुले हैं ।

सद्‌भावी बन्धुओं ! यहाँ अति विचारणीय एवं सूझ-बूझ से काम लेने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि दोनों समधी (युवक-युवती के पिता) यानी समान बुद्धि वाले हैं, सम (समान) धी (बुद्धि) समधी (समान बुद्धि वाले) । किस मामले में समान बुद्धि ? तो जवाब यह नहीं है कि दोनों की बुद्धि एक समान हर मामले एवं क्रिया-कलाप में ही समान है, ऐसा कदापि नहीं है । तब क्या है ? तो यहाँ पर मात्र युवक-युवती दोनों को एक-दूसरे से आपस में जीवन पर्यन्त तक के लिए फँसा-फँसा कर अपना भार या बोझ हल्का करने के "कार्य विशेष" में ही

समान बुद्धि (समधी) हैं क्योंकि दोनों मिलकर ही दोनों को राजी-खुशी रूप फँसाहट का पर्दा रखते हुए एक-दूसरे को बन्धन में ऐसा बांधते हैं कि अब आप दोनों को अपने से पृथक् एक अलग से वासनात्मक सम्बन्ध को मध्य में रखते हुए आपस में अपनत्व के बन्धन में बांधकर अपने दोनों (समधी) आप दोनों से (वर-वधू से) स्वतन्त्र हो जाते हैं । अब आप दोनों आपस में फँस-फँसाकर जब तक जवानी का जोश (अधिक से अधिक ५ वर्ष तक) तो यह बन्धन आप को लगेगा कि आप क्या ही आनन्द प्राप्त कर लिए हैं परन्तु ५ वर्ष तक भोगने के बाद तो यह विवाह और यह भोग, वह विपत्ति, वह समस्याओं का जाल काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ममता, मोह, माया, वासना आदि समस्त आपदाओं की साक्षात् मूर्ति रूप औरत को पाकर कोई चाहे कि स्थिर, शान्ति, चैन से तथा आराम-विश्राम से, शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर कैसे सकता है ? कदापि नहीं प्राप्त कर सकता है । क्योंकि यह जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ममता, माया वासना आदि समस्त अवगुणों की खान रूप स्त्री आपको अमन-चैन तथा शान्ति और आनन्द की अनुभूति कैसे पाने दे सकती है ? कदापि आपको चैन नहीं मिलेगा । दोनों समधी आप दोनों (युवक-युवती) को फँसाने के अन्तिम स्थिति तक पहुँचा दिये । युवती का पिता युवक को विष्णु तथा युवक का पिता युवती को लक्ष्मी की उपाधि देकर, मात्र विवाह की रश्म भर ही, ये लोग आप दोनों को विष्णु व लक्ष्मी मानेंगे । विवाह के पश्चात् तो पुनः वही बेटा और बहू तथा बेटी और दामाद ही कहेंगे। थोड़े देर के लिए भी तो आप दोनों सोचिए कि क्या आप विष्णु और वह लक्ष्मी है ? और यदि है तो पहले (विवाह से) और विवाह के बाद आप लोग विष्णु-लक्ष्मी क्यों नहीं रहे ? मात्र फँसाहट ही है । असलियत का नामोनिशान नहीं। विवाह कर रहे हैं तो ५ साल बाद आपको भी पता चल ही जाएगा।

कन्या निरीक्षण

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! विवाह रश्म के अन्तर्गत द्वार पूजा के पश्चात् होने वाली यह दूसरी प्रमुख रश्म है, जिसमें वर के बड़े भाई के साथ बारात के प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति जो प्रायः समीपी होते हैं, कन्या निरीक्षण हेतु मकान के आंगन में बने मण्डप में जहाँ पर पूजोपचार के प्रायः सभी मांगलिक सामग्रियाँ,

आचार्य, पण्डित, नाई तथा परिवार-रिश्तेदार और गाँव-पड़ौस के लोग (स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ) आदि रहती हैं, जहाँ पर बीच में एक पर्दा टँगा होता है, जिसके आड़ में वधू अपनी सहेलियों एवं नाईन आदि द्वारा लाकर पर्दे के लोत (आड़) में बैठायी जाती है और आचार्य-पण्डित बड़े भाई को रश्म के विधि-विधानों के अनुसार कन्या निरीक्षण कराते हैं । तत्पश्चात् उसी भाई द्वारा कन्या को अपने साथ लाये हुए आभूषण-वस्त्र आदि सुपुर्द कर देते हैं । द्वार पूजा तथा यह कन्या-निरीक्षण आदि की रश्में स्त्रियों आदि के मांगलिक गीतों के अन्दर ही होते हैं ।

विवाह

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहासक्त बन्धुओं ! कन्या निरीक्षण के पश्चात् विवाह की मुख्य रश्म प्रारम्भ हो जाती है जिसमें वर वधू के यहाँ आंगन वाले मण्डप को जाता है, जहाँ पर विवाहोपचार हेतु सारी व्यवस्थाएँ आचार्य-पण्डित जी द्वारा व्यवस्थित करायी गयी होती है और मांगलिक गीतों के बीच विवाह-पद्धति के अनुसार अग्नि को साक्षी के रूप में प्रतिष्ठित कर अखण्ड-दीप ज्योति जला कर जल कलश पर रखी रहती है । कन्या के माता-पिता कन्या दान हेतु अपनी कन्या को वर को दान करने हेतु मण्डप में उपस्थित रहते हैं । आचार्य-पण्डित जी द्वारा विवाह-पद्धति से कन्या दान की प्रक्रिया मांगलिक गानों के बीच मन्त्रों के उच्चारण के साथ पूरी करते-कराते हैं । पुनः वर द्वारा वधू के मांग में सिन्दूर-दान की प्रक्रिया भी पूरी करा दी जाती है और वर-वधू को विवाह-बन्धन रूपी गाँठ जोड़ कर मण्डप-केन्द्र में रखे हुए शुभ कलशादि से युक्त अग्नि आदि आह्वानीय देवता के समक्ष आचार्य-पण्डित जी के मन्त्रोपचार के साथ ही विवाह-वेदी के चारों तरफ आगे-आगे वर और पीछे-पीछे वधू को क्रमशः सात चक्र यानी सात फेरी (सप्त पदी) कराते हुए प्रत्येक चक्र (फेरी) के पश्चात् वर-वधू दोनों को एक-दूसरे के व्यवहार को जीवन-पर्यन्त निभाते हुए सह-कर्म, सह आचरण-व्यवहार एवं सह-भोग हेतु बचन लेना-देना (सत्य-प्रतिज्ञा) करना पड़ता है, जिसके हेतु अग्नि को साक्षी रखा जाता है । यह क्रम बचन लेते-देते हुए सात चक्र यानी सात फेरी करायी जाती है, जिसको सप्त पदी कहा जाता है।

विवाह पद्धति के अन्तर्गत सप्तपदी को एक विशेष महत्व दिया जाता है ।

हिन्दू कानून तो सप्तपदी के महत्व को इतना ऊँचा स्थान दिया है कि सही-सही यदि न्यायालय में प्रमाणित हो जाय कि सात चक्र नहीं, बल्कि छः चक्र ही लगवाया गया था, तो विवाह माना ही नहीं जा सकता है, ऐसे विवाह को कानूनी मान्यता भी नहीं मिल सकती है । अब आप इससे सप्तपदी के महत्व का स्वयं आंकलन कर सकते हैं ।

विवाह पद्धति में ही पाणि-ग्रहण संस्कार भी होता है, जिसके अन्तर्गत वर के हाथ पर वधू का हाथ रखकर वधू के भाई से शुद्ध जल-पात्र से दोनों के नीचे ऊपर रखे गये तैलधारावत् वृत्ति से जल को गिराया जाता है जिसमें यह सावधानी बरतनी पड़ती है कि धारा खण्डित न हो सके जिसका अर्थ भाव होता है कि विवाह सम्बन्ध अखण्ड रहे । इस प्रकार विवाह-पद्धति होती है ।

अन्य प्रक्रियाएँ

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! विवाह के अन्तर्गत तो अन्य अधिकाधिक प्रक्रियाएं होती हैं, जिसमें मुख्य-मुख्य को ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है । आप बन्धुओं से मैं अपनी सही स्थिति बतलाऊँ तो शायद आप बन्धुओं को विश्वास नहीं होगा, परन्तु असलियत यही है कि मेरी कलम इस विवाह-पद्धति रूप घोर घृणित कर्म को लिखने हेतु आगे बढ़ ही नहीं पा रही है । मुझे इस वैवाहिक प्रकरण को किस तरह खींच-खाँच यानी घसीट कर आखिर तक पहुँचाना पड़ा है, इस कठिनाई को हम ही समझ पा रहे हैं । आपको विश्वास ही नहीं होगा कि "इस प्रकरण को लिखने में मेरी इस कलम को भी कितना कठिनाई उठाना पड़ रहा है तथा हाथ और मस्तिष्क को भी इस विषय को लिखने में जितनी घृणा एवं आश्चर्य जनक कष्ट सहन करना पड़ रहा है । इन परेशानियों के कारण अफनाकर किसी-किसी प्रकार इस प्रकरण को खींच-खाँच यानी घसीट कर यहाँ तक ले आया हूँ । लग रहा है कि विवाह के अन्तर्गत होने वाले अन्य भोज-भात, खीर-खाने, जनवासा तथा मिलन और विदाई आदि की प्रक्रियाएँ लिखना या आपके समक्ष प्रस्तुत करना इस सद्ग्रन्थ को घृणित बनाना ही होगा । हमसे अब आगे इस प्रकरण पर नहीं बढ़ा जा रहा है ।

उपसंहार

मैं अपने दिल की बात आपसे खुल कर कह-लिख रहा हूँ कि मेरी परेशानी इस प्रकरण को लिखने में कितनी हुई तथा इस समय तक मैं कितना परेशान हो सका हूँ कि कह नहीं सकता हूँ। मेरे इन शब्दों से मेरे भाव को पकड़ने की कोशिश करें। मैं तो भगवान् से बार-बार, हजार बार, पुनः बार-बार अनन्त बार निवेदन करूँगा कि हे प्रभु ! हे परम प्रभु मुझे ऐसे घोर-घृणित प्रसंग (वैवाहिक प्रकरण) जैसे लिखने से बचाये रख, तो आपकी हम पर विशेष कृपा ही हमें महसूस होगी। हे परम प्रभु ! मुझे ऐसे घृणित प्रसंग दिमाग में न लाने पड़ें, यह आप ही के कृपा से सम्भव हो पाया है। हे परम प्रभु ! इस क्षुद्र प्रकरण को यहाँ पर प्रस्तुत करने में जो मुझे कठिनाई एवं परेशानी उत्पन्न हुई है और अभी-अभी जो हो रही है इससे एक मात्र तू ही हमें राहत दे दिला सकता है। तेरे सिवाय हमारा है ही कौन कि जिससे मैं अपनी इस दुःख व्यथा को सुनाऊँ कि इतना गंदा, इतना घृणित, इतना पापमय इस वैवाहिक प्रकरण को प्रस्तुत करने में मेरे दिल व दिमाग में जो इस घोर घृणित एवं अधःपतित समाज की चर्चा करते हुए गन्दगी एवं घृणा के जो भी भाव समाए हों, हे प्रभु! हे परमप्रभु उससे मुझे उबार। क्योंकि न तो मेरा कोई और है और न तो मुझे आपके सिवाय किसी और की आवश्यकता ही है। मेरा बार-बार प्रार्थना है कि इससे उबार तथा ऐसे घृणित प्रसंग रखने-लिखने से मुझे बचा। दुनिया का यह घोर घृणित एवं अधः पतित रूप गृहासक्त गृहस्थ के ऐसे विधानों को जिसमें जीव को आप परम प्रभु से तथा आप परमात्मा या परमब्रह्म के नित्य सम्पर्क सेवा में रहने वाले आत्मा या ब्रह्म से बिछुड़ा कर विनाशी अधः पतित रूप घोर घृणित विधानों से आपस में शरीरों में फँस-फँसा रहे हैं और खुशी मनाते हुए। हाय रे ! मन मतंगों, परम प्रभु परमात्मा तथा आत्मा से हटकर शरीरों में फँस रहे हो।

विवाह का वास्तविक रूप

सद्भावी सत्यान्वेषी गृहस्थ बन्धुओं ! आइये यहाँ पर विवाह के वास्तविक रूप पर विचार-विमर्श करते हुये इसकी यथार्थता को समाज में प्रस्तुत किया जाय । विवाह अज्ञानी, जढ़ी, मूढ़, मोह-माया जाल में आसक्त अधःपतित रूप गृहासक्तों द्वारा फँसने-फँसाने वाली एक घोर घृणित प्रक्रिया है । जिसकी आध्यात्मिक महापुरुष तो घोर घृणा के रूप में निन्दा करते ही रहे हैं, तात्त्विक सत्पुरुष रूप भगवदवतार भी खुले दिल से घोर घृणित भाव में निन्दा किये वगैर नहीं रह सके ।

इस प्रकार विवाह को सृष्टि का कर्ता-भर्ता-हर्ता रूप तीनों का संयुक्त रूप सर्वशक्ति सत्ता-सामर्थ्य रूप खुदा-गॉड-भगवान् के अवतार भी घृणित भाव में घोर निन्दा किये वगैर नहीं रह सके तथा अपने परम भक्तों-सेवकों-प्रेमियों को भी इस घृणित कार्य से बचाये रखे । उनके द्वारा प्रदत्त शापपूर्ण (नारद मोह प्रसंग) कष्टों को भोगे, फिर भी उन्हें बचाये।

विवाह के सम्बन्ध में भगवदवतार श्री रामचन्द्र जी के 'मत' को जो श्री रामचरित मानस के अरण्य काण्ड के अन्तिम दोहा-चौपाइयों में उल्लिखित है, यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है। आप पाठक बन्धुओं से साग्रह निवेदन है कि इस प्रकरण को बहुत ही सूझ-बूझ के साथ दो बार, तीन बार, चार बार, पाँच बार, यहाँ तक कि इसे तब तक पढ़ते और समझते रहें जब तक कि यह पूरा का पूरा समझ में न आ जाय । तत्पश्चात् व्यवहार जगत में देखें कि क्या यह अक्षरशः सत्य ही नहीं है ? तो आपको दिखायी देगा कि अक्षरशः शत-प्रतिशत व्यवहार जगत में यह बात व्यवहरित है। तत्पश्चात् बन्धुओं ! अपना तथा समाज का खुले दिल से कल्याण करने हेतु सुधार और उद्धार हेतु इस "मत" का खुले दिल से प्रचार-प्रसार करते-कराते हुये, परमब्रह्म तथा ब्रह्म से बिछुड़ेमाया-मोह-ममता-वासना के साथ ही साथ काम-क्रोध-लोभ-अहंकार आदि समस्त अवगुणों के खान रूप कामिनी (स्त्री) से तथा जढ़ता एवं मूढ़ता मय बनाने-बनने वाले सम्पत्ति से जीव को मोड़

कर पुनः उस जीव को ब्रह्म तथा परम प्रभु रूप परमब्रह्म से जोड़ कर शरीर-सम्पत्तिमय रखने के स्थान पर ब्रह्ममय एवं अनन्य भाव से भगवद् शरणागत रहें-करावें। यही मानव जीवन का चरम और परम लक्ष्य भी है कि माया-मोह में फँसे जीवों को मुक्त करावें । विवाह के वास्तविकता की जानकारी करना हमारे और आप सभी बन्धुओं के लिये यह समझना आवश्यक है कि "यह वह घोर घृणित माया-बन्धन है जो अधःपतन को ले जाती है।" विवाह शब्द एक महान् अशुभ, घोर घृणित एवं घोर निन्दित शब्द एवं पद्धति है, जिसकी आध्यात्मिक महापुरुषों ने आदि काल से ही आलोचना-निन्दा करते हुए अपने भक्त, सेवक, प्रेमियों को इससे दूर रखते हुए उन्हें बचाते तो आये ही हैं, साथ ही साथ भगवदवतार रूप भगवान् श्रीविष्णु जी भी इसकी निन्दा करने से अपने को रोक नहीं पाये। भगवदवतार रूप श्रीराम जी का प्रकरण अब आप सूझ-बूझ के साथ यहाँ देखें ।

श्री राम जी द्वारा नारद जी का शंका - समाधान (मानस से) :-

अति प्रसन्न रघुनाथहिं जानी । पुनि नारद बोले मृदु बानी ।।
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ।।
तब विवाह मैं चाहऊँ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ।।
सुनु मुनि तोहि कहऊँ सहरोसा । भजहिं मोहि तजि सकल भरोसा।।
करऊँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ।।
गह शिशु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ।।
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ।।
मौरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी । बालक सुत सम दास अमानी ।।
जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही।।
यह विचारी पंण्डित मोहि भजहिं । पाएहुँ ग्यान भगति नहीं तजहिं।।
दोहा - काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ।। ४३।।
सुनि मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता । मोह विपिन कहुँ नारि वसन्ता।।
जप तप नेम जलाश्रम झारी । होई ग्रीषम सोषइ सब नारी ।।

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ।।
दुर्वासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदायी ।।
धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा । होई हिय तिन्हहि दहई सुख मंदा ।।
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ।।
पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निविड़ रजनी अँधिआरी ।।
बुधि बल शील सत्य सब मीना । वनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।।
दोहा - अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जीयँ जानि ।। ४४ ।।
सुनि रघुपति के बचन सुहाए । मुनि तन पुलक नयन भरि आए ।।
कहहु कवन प्रभु कै असि रीति । सेवक पर ममता अरु प्रीति ।।
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ग्यान रंक नर मंद अभागी ।।

<u>अर्थ</u> :- रघुनाथ (श्री राम) जी को अति प्रसन्न जानकर नारद जी फिर से मधुर मधुर वाणी में बोले कि "हे रघुनाथ जी (राम जी) जब अपनी माया से प्रेरित करते हुए मुझे मोहित कर दिये थे तब मैं उत्प्रेरित होकर विवाह की चाह करने लगा । तो हे प्रभु ! वह कौन सा कारण था कि जिसके चलते आप ने हमें विवाह नहीं करने दिया । हे मुनि यदि आप पूछते हैं तो आपको विश्वास दिलाते हुए कह रहा हूँ कि जो मेरा अनन्य भक्त-सेवक-प्रेमी सभी आशा-तृष्णा यानी भरोसा को छोड़ कर केवल मेरे भजन में लगा रहता है । अपने उस भक्त-दास-प्रेमी की सदा उसी प्रकार से रखवारी करता रहता हूँ जिस प्रकार अपने छोटे से बालक की रखवारी उसकी माता करती है । जिस प्रकार शिशु और बछड़ा आग और साँप को दौड़ कर पकड़ने जाते हैं तो माता और गाय उनकी आग और साँप से रखवारी करती है यानी उन्हें बचा लेती है, ठीक उसी प्रकार मैं भी अपने अनन्य भक्तों, अनन्य सेवकों तथा अनन्य प्रेमियों को सदा रखवारी करते हुये बचा लेता हूँ । जिस प्रकार प्रौढ़ यानी युवा हो जाने पर माता अपना वह प्रेम और रखवाली जो शिशु की करती थी, अब नहीं करती । वैसे ही मेरे प्रौढ़ (युवा) पुत्र के समान ज्ञानी हैं तथा बालक पुत्र के समान मेरा निरभिमानी (अभिमान रहित) दास होता है । मेरे जनों (दासों) को तो केवल मेरा बल ही का भरोसा होता रहता है, अपना कुछ नहीं । परन्तु ज्ञानी का तो अपना बल होता रहता है । इन दोनों के पास ही काम

और क्रोध रूपी शत्रु कैसे आ सकता है अर्थात् नहीं आ सकता है। इसी के विचार से पण्डित (विद्वत्) जन भी मेरा ही भजन करते रहते हैं, ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भी मेरी भक्ति को नहीं छोड़ते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मद आदि मोह के शक्तिशाली(हथियार) के धार के रूप में है। इन सभी के बीच जो सबसे अधिक कष्ट देने वाला दुःख माया रूपी स्त्री होती है। हे नारद मुनि ! सुनिये मैं आप से बतला रहा हूँ कि संत, वेद, पुराण आदि बतलाते-कहते हैं कि यदि मोह को जंगल कहा जाय, तो उसके पल्लवित पुष्पित होने-करने के लिये स्त्री बसन्त ऋतु के समान होती है। अर्थात् स्त्री सदा ही मोह को नये-नये रूप देते हुये फँसाया करती है। जप-तप-व्रत-नेम आदि को यदि झाड़ी मानते हैं तो औरत (स्त्री) को ग्रीष्म ऋतु समझें अर्थात् ग्रीष्म ऋतु जिस प्रकार झाड़ियों के रसों को सुखा देती है, ठीक स्त्रियाँ जप-तप, व्रत-नेम, पूजा-पाठ, यम-नियम आदि के विधि-विधानों को चूसकर यानी मोह-माया-ममता-वासना लोभ आदि में जकड़ कर सबके महत्व को समाप्त करा देती है, सुखा देती है। स्त्रियाँ इनकी शोषिका हैं। काम-क्रोध-मद-मत्सर आदि को यदि टर्र-टर्र करने वाला मेंढ़क मानते हैं, तो स्त्री को हरष प्रदान यानी खुशहाली प्रदान करने वाली वर्षा जानें। अर्थात् जिस प्रकार वर्षा मेंढ़क को खुश कर देती है, ठीक उसी प्रकार स्त्री सम्पर्क से काम-क्रोध-मद-मत्सर आदि को शरीर में खूब खुशी होती है। यानी स्त्रियों से सदा ये शरीर में बढ़ते रहते हैं। दुर्वासना को यदि कुमुद का फूल मानें तो स्त्रियों को शरद ऋतु जानें, जिसमें कुमुद काफी सुख प्राप्त करती है। अर्थात् जिस प्रकार शरद ऋतु को पाकर कुमुद (फूल) खूब खिल जाती है यानी सुख प्राप्त करती है, ठीक उसी प्रकार स्त्रियों से दुर्वासना को खूब खुशी मिलती है यानी स्त्रियों के सम्पर्क से शरीर में दुर्वासना बहुत ही बढ़ जाती है। सब धर्म को यदि आप खिला हुआ कमल वृन्द मानते हैं तो स्त्रियों को उसको जला देने वाला हिमयानी ओला-पाला समझें जो कमल वृन्द जैसे सब धर्म समूह को जला-जला कर समाप्त कर देती है। अर्थात् स्त्रियों के सम्पर्क से मानव के सब धर्म पर ही काम-क्रोध-ममता-मोह-वासना-दुर्वासना रूपी ओला-पाला से सब धर्म जल जाते हैं। ममता को यदि जवास (फूल) मानते हैं तो स्त्रियों को उसको पालने-पोषने वाला सिसिर ऋतु समझें। अर्थात् स्त्रियों के सम्पर्क से दिनों दिन ममता-मोह-

वासना मिलती व बढ़ती जाती है । बुद्धि, बल, शील, सत्य आदि सभी को यदि आप मछली मानते हैं तो नारी को उन मछलियों को अपने काँटों में फँसा कर विनाश कर देने वाली जानें । अर्थात् नारी (स्त्री) मनुष्य को अपने ममता-मोह-माया-वासना में फँसाकर उसके बुद्धि, बल, शील, सत्य, धर्म आदि को समाप्त करते हुए विनाश तक ठीक उसी प्रकार पहुँचा देती है, जिस प्रकार कि बंशी मछली को फँसाकर विनाश कराती है।

इससे नारी (स्त्री) सभी अवगुणों की खान तथा सूल आदि समस्त कष्टों को भी देने वाली है। इतना ही नहीं, ये स्त्रियाँ सभी दुःखों की खान ही होती हैं । इनके सम्पर्क वाला व्यक्ति सुख चाहे तो यह तो बिल्कुल ही असम्भव बात है। इनसे सम्पर्क रखने वाले को हमेशा ही कष्ट एवं दुःख झेलते रहना पड़ता है । हे मुनि ! यही सब मैं अपने अन्दर में जान-समझ करके ही आप को विवाह नहीं करने दिया । इस विवाह रूप माया-मोह-ममता-वासना आदि वाली स्त्री से आप को बचाया है। ऐसा ही मेरे के अन्दर हुआ कि आप को इस विनाश से बचा लूँ ।

सद्भावी बन्धुओं ! रघुपति श्रीराम जी के ऐसे कल्याणकारी बचन नारद जी को बहुत ही अच्छे लगे । नारद जी के आँखों में इतने बड़े इस उपकार के प्रति भावपूर्ण आँसू भर आये और नाना भाँति से विचार करने लगे कि कहिये न ! कि इस परमप्रभु की रीति कैसी है ! यानी कितनी अच्छी है कि सेवकों पर इस प्रकार से ममता रखकर सदा ही उसका देख-भाल अथवा रखवाली करते रहते हैं । इस प्रकार जो कोई भी ऐसे परम प्रभु का भजन नहीं करता, वह ज्ञान का कंगाल अभागा आदमी है । यानी उस मूढ़, अभागे को इतना भी ज्ञान नहीं है कि वह ऐसे परम प्रभु का अनन्य भाव-निष्ठा के साथ भजन करता रहे । यह रही आप बन्धुओं के समक्ष श्री रामचन्द्र जी महाराज का नारद जी के प्रति विवाह सम्बन्धी उपदेश।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! भगवदवतार श्री रामचन्द्र जी महाराज के विवाह सम्बन्धी इस उपर्युक्त 'मत' पर भी किसी को नहीं समझ में आवे, इतने पर भी न समझ सके तो ऐसे अज्ञानी (ज्ञानहीन) मनुष्यों के लिये अधःपतित रूप शारीरिक भाव में रहते हुए तो समस्त कष्ट एवं विपदाओं से गुजरना ही पड़ेगा । शरीर छोड़ने पर नरक में भी नित्यप्रति कठोरतम एवं घोरतम यातनाओं से ही

गुजरना होगा तथा कितने कोटि बार आवागमन चक्र से मृत्यु लोक में कीट-पतंगादि योनियों से गुजरना पड़ेगा। यह वही समझेगा।

विवाह के सम्बन्ध में भगवदवतार श्रीविष्णु जी महाराज ने भी ऐसा ही कहा है कि लोहे के जंजीर में यानी लौह-पाश में फँसा आदमी तो किसी न किसी दिन मुक्त (छूट) हो ही जाता है परन्तु माया-मोह-ममता-वासना रूप स्त्री पाश से मनुष्य को छूटना और मुक्त होना एक अति कठिन बात होगा। यदि असम्भव भी कह दिया जाय तो कुछ समय के लिये उचित ही होगा। स्त्री पाश ही है जो मानव को अपने माया-मोह-ममता एवं वासना आदि में फँसाकर सृष्टि के चौरासी लाख योनि में नचाता रहता है। मनुष्य चाहते हुये भी आसानी से इस मोह-पाश (स्त्री पाश) को काट नहीं पाता और जन्म-जन्मान्तर तक नाना कष्टों, नाना दुःख एवं विपदाओं को झेलता रहता है। अरे अभागे स्त्री पाश में आसक्त गृहासक्तों ! अरे ! इतने पर भी तो चेत। अब भी तो अनन्य भाव से भगवद् शरणागत होकर अपना उद्धार कर-करा ले। फिर ऐसा मौका कब मिलेगा, ठिकाना नहीं है।

"विवाह" फँसाहट एवं बर्बादी कैसे ?

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! "विवाह" फँसाहट एवं बर्बादी कैसे -- का प्रकरण तो बहुत कहा-देखा जा चुका। परन्तु यह ऐसी बात है कि ऐसा बार-बार कहने-लिखने पर भी फँसे हुये बन्धुओं को देखते हुये सन्तोष नहीं हो पा रहा है कि आखिर ये इस घोर माया-मोह-ममता-वासना रूपी समस्त अवगुणों और दुःखों की खान इनके संयुक्त रूप साक्षात् मूर्ति रूपी स्त्री-पाश में फँसते जा रहे हैं। अब हम लोग इस बात पर तो पूर्णतः आश्वस्त हो ही गये हैं कि स्त्री-पाश में जकड़े हुये तथा ऐसे स्त्री-पाश में जकड़ने वाले को निकालना एवं उन्हें बचाये रखना भगवत् कृपा विशेष के सिवाय इन घोर अधःपतित अज्ञानी अभागे मानव का सुधार एवं उद्धार रूप कल्याण होना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव कार्य या बात है। मानव कामिनी-कांचन अथवा व्यक्ति-वस्तु अथवा शरीर-सम्पत्ति में इतना जकड़ गया है कि इस मूढ़ एवं जढ़ी मानव ने अपने 'स्व' रूप जीव भाव को भी भूल गया है और शरीर भाव से भी गिर कर सम्पत्ति भाव में जा पहुँचा है। यानी अब सम्पत्ति संग्रह करने में शरीर को भी लगा-बझा तथा समाप्त कर-करा दे रहा

है । सम्पत्ति के चलते आज शरीर का महत्त्व भी समाप्त हो चुका है । जहाँ तक हम समझ पा रहे हैं, मानव पतन के अन्तिम रूप में पहुँच चुका है । इसको पतन के इस अन्तिम रूप से निकाल कर उत्थान के अन्तिम रूप भगवद् शरणागत कराना अब इतना आसान काम नहीं रह गया है जितना कि श्रीविष्णु जी, श्रीराम जी तथा श्रीकृष्ण जी महाराज आदि के समय में था । आइये अब मूल शीर्षक 'विवाह' फँसाहट एवं बर्बादी कैसे-- को यहाँ सूझ-बूझ के साथ जाना-देखा-समझा-कहा जाय तथा अपने जीवन में उतारा जाय।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! सबसे आदि में तो सभी जीव परमब्रह्म-परमेश्वर में समाहित थे । परमप्रभु की प्रेरणा से उन्हीं में से आत्म ज्योति अथवा ब्रह्म ज्योति निकल कर पृथक् हुआ। तत्पश्चात् पृथक्करण के सिद्धान्त से सारी सृष्टि एवं ब्रह्म ज्योति से जीव भाव की उत्पत्ति हुई । गर्भस्थ शिशुस्थ जीव तो एक हद (सीमा) तक ब्रह्ममय स्थिति में रहा, परन्तु गर्भ से बाहर आते ही मायावी-साँसारिक-शारीरिक मोहासक्त (माया की प्रेरणा से) होकर रहने वालों द्वारा शिशुस्थ ब्रह्ममय जीव का सम्बन्ध काट-कटवा कर (ब्रह्मनाल कटवा कर) ब्रह्म से विच्छेद कर-करा कर जीव को शरीरमय बना दिया गया । इसके पश्चात् शारीरिक भाव के आये दिन के अभ्यास से शरीरमय जीव को भी पूर्णतः शरीर भाव में कि 'मैं शरीर' ही हूँ, शरीर के अलावा और कुछ नहीं, तक पहुँचा दिया गया । शारीरिक भाव वाले माता-पिता, भाई-बहन आदि नाना सम्बन्धों को स्थापित करते हुए जीव को पूर्णतः शरीराभास रूप तक पहुँचाते हुए, शारीरिक, पारिवारिक बनाते हुए पूर्णतः ब्रह्ममय स्थिति से बिछुड़ा-भुला-भटका कर संसारमय बना दिया गया । संसार में फँसाकर अधःपतन के अन्तिम रूप सम्पत्तिमय तक पहुँचा दिया गया, जिसके बाद तो अब पतन के लिए भी स्थान नहीं रहा, यानी पतन का भी पतन रूप भी यहीं तक हैं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! कहाँ तो जीव ज्योतिरूप ब्रह्म था जो प्रारब्ध कर्म तथा प्रभु प्रेरणा से वह शरीरस्थ (शरीर में प्रवेश करके) जीव भाव में आया । ब्रह्म से गिरकर या पृथक् होकर या पतित होकर शरीर में प्रवेश करके जीव रूप हो गया । तो जब जीव ब्रह्म-ज्योति था, तब तो सीधे भगवान् से सम्बन्धित था । भगवान् के द्वारा ही सभी भगवद् भाव में ही रहते थे तथा भगवद् लाभ को

सदा ही प्राप्त थे । परन्तु ब्रह्म-ज्योति से पृथक्करण से शरीरस्थ जीव बने तो भगवद् सम्पर्क तो टूट ही गया, भगवद् सम्बन्ध भी शरीर में आते ही कट गया । अब जीव का सीधा सम्बन्ध ब्रह्म ज्योति से हो गया और जीव जो ब्रह्म ज्योति रूप में भगवन्मय था, अब भगवन्मय से बिछुड़ कर ब्रह्ममय हो गया जिससे भगवद् लाभ तो इसका बन्द हो गया । अब उसके स्थान पर इसे ब्रह्ममय भाव में रहते हुये शान्ति और आनन्द रूप चिदानन्द या ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने लगी । जबकि भगवद् भाव में था तो परमशान्ति और परमानन्द रूप सच्चिदानन्द या सदानन्द रूप बोध होता हुआ मुक्ति और अमरता से भी युक्त था । परन्तु अब तो ये सब समाप्त होकर यानी बोध होना बन्द होकर अनुभूति मात्र ही रह गई । पुनः गर्भस्थ शिशुस्थ जीव ब्रह्ममय रहता हुआ शान्ति और आनन्द रूप स्थिर ब्रह्मानन्दमय रहता था । परन्तु गर्भस्थ शिशुस्थ ब्रह्ममय जीव जैसे ही गर्भ से बाहर आया कि जीव का ब्रह्ममय भाव भी ब्रह्मनाल कटवाकर ब्रह्म से सम्पर्क विच्छेद करवाकर मिल रहे स्थिर शान्ति और आनन्द रूप स्थिर ब्रह्मानन्द से भी बंचित करवा दिया गया और ब्रह्ममय भाव से जीव को शरीरमय जीव भाव में कर दिया गया। तो वह स्थिर शान्ति और आनन्द रूप ब्रह्मानन्द से भी बंचित होकर शरीरमय जीव भाव से आनन्दमय मात्र रहने लगा । पुनः आये दिन चारों तरफ से शारीरिकों के शारीरिक हम-हम से अभ्यसित होकर जीव का जीव भाव भी समाप्त होकर मानो अब केवल शरीराभास ही रह गया । अर्थात् जीव अपने शरीर को ही अपना रूप एवं शरीर के नाम को ही अपना नाम मानने-जानने लगा तथा शरीर के इसी भाव से संसार में व्यवहरित भी होने लगा । चूँकि शरीर को तो प्रायः सभी लोग ही जानते हैं कि यह शरीर सभी विकारों से भरा पूरा एक मल की कोठरी है, जो पसीना, मेदा (नाक से निकलने वाला गदला पोटा), कीचर (आँख की गन्दगी), खोंट (कान से निकलने वाली गन्दगी), खेंखार-बलगम (मुख से निकलने वाली गन्दगी), पेशाब तथा पखाना आदि के रूप में मल इस शरीर से बराबर ही बाहर निकलता रहता है, जिसे प्रायः सभी मनुष्य जान-देख रहे हैं । फिर भी इस शरीर में ऐसा चिपक (माया-मोहासक्त हो) गये हैं कि इन्हें भगवान् से मतलब तो नहीं ही जान पड़ता है, ब्रह्म से भी मतलब महसूस नहीं हो रहा है । भगवान् और ब्रह्म से मतलब तो इन्हें नहीं ही रहा, अब तो अपने जीव को भी जानने-समझने तथा इस

मल की कोठरी से अपने (जीव) को पृथक् मानने की इच्छा या आवश्यकता भी इन्हें नहीं रह गयी है । अब ये मात्र शारीरिक माता-पिता के मैथुनी-मल से बनी इस विनाशशील क्षणिक मल की कोठरी में ही जकड़े रहना ज्यादा पसन्द कर रहे हैं तथा इस मल की कोठरी रूप शरीर के लिये बने संसार के पीछे अनायास ही व्यर्थ दौड़ रहे हैं।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! थोड़ा तो आप भी विचार करते हुए थोड़ा भी तो सूझ-बूझ से काम लीजिये कि कहाँ तो आप परम शान्ति और परम आनन्द रूप सच्चिदानन्द - सदानन्द (शाश्वत् शान्ति और आनन्दमय) रूप मुक्ति और अमरता से युक्त भगवद् भाव रूप में भगवद्मय ब्रह्म-ज्योति थे, जो मुक्ति और अमरता प्रदान करने वाले भगवान् से सदा सम्पर्क रखने से बोध होता रहता था । तत्पश्चात् प्रारब्ध के वशीभूत होकर और भगवद् प्रेरणा से भक्ति-सेवा-प्रेम से पूर्णतः भगवद् विलीन होने के लिये शरीर में आकर ब्रह्ममय जीव बने । तो इस स्थिति में भी स्थिर शान्ति और आनन्द रूप चिदानन्द या ब्रह्मानन्दमय बह्ममय भाव में रहे, तब भी कम से कम अविनाशी वाला भाव तो बना ही था । पुनः जब ब्रह्ममय जीव का सम्बन्ध ब्रह्म से कटवा दिया गया और शरीरमय जीव भाव तत्पश्चात् शारीरिकों के बार-बार के शारीरिक अभ्यास द्वारा जीव भाव को भी समाप्त कर-करवा कर मात्र शरीर भाव कि मैं शरीर हूँ, शरीर ही मेरा रूप है तथा शरीर का नाम ही मेरा नाम है और शारीरिक नाम-रूप मात्र वाले माता-पिता, भाई-बहन आदि सगा-सम्बन्धी, दोस्त-मित्र ही मेरे सम्बन्धी तथा हितेच्छु हैं -- इस प्रकार जब इस शरीर को ही अपना नाम-रूप मानकर मैं केवल शरीर मात्र हूँ, शरीर से अलग कुछ नहीं -- तत्पश्चात् शरीर भाव से भी पतित रूप स्त्री भाव और सम्पत्ति भाव जब हो जाता है, तब थोड़ा आप बन्धुओं भी तो सोचें कि जो आप अपने को मानेंगे, तो उसकी जो गति होगी, वही गति तो आपकी भी होगी अथवा होती हुई मानी जायेगी ! इस प्रकार जब आप केवल शरीर मात्र ही हैं और शरीर से पृथक् कुछ नहीं है। तब तो शरीर की जो गति होगी वही आपकी गति होगी अथवा शरीर की गति ही आप की गति मान ली जायेगी। तब तो शरीर विनाशशील है, तो आप भी विनाशशील हुए । शरीर मलों की कोठरी है, तो आप भी मलों की कोठरी मात्र ही हुए । शरीर क्षणिक है यानी किस क्षण इसकी समाप्ति हो जायेगी

यह पता नहीं, तो आप भी क्षणिक ही हुये यानी पता नहीं किस क्षण आप की भी समाप्ति हो जायेगी। शरीर सभी विकारों से भरी-पूरी विकारों मात्र की ही एक कोठरी है, तो आप भी विकारों से भरे हुये एक कोठरी मात्र है। शरीर जड़ पदार्थों से बनी एक जड़वत् मशीन यन्त्र मात्र है। क्योंकि जीव इसमें रहता है तो यह क्रियाशील एवं गतिशील रहती है और जीव जब शरीर को छोड़ देता है तब यह क्रियाहीन एवं गतिहीन मृतक् रूप जड़वत् ही पड़ा रहता है और मात्र शरीर ही आप हैं तब तो आप भी मुर्दा के समान (मृतक के समान) ही हैं। ठीक जिस प्रकार मुर्दा जड़वत् है उसी प्रकार आप भी जड़ ही हैं। तब तो ऐ जढ़ी एवं मूढ़, विनाशी तुझ जड़ शरीर और मृतक् में जो बोलने-चालने वाला अन्तर है, वह क्या है? अरे जढ़ी एवं मूढ़ गृहस्थ! अब से भी तो चेत कि तू शरीर मात्र नहीं है बल्कि शरीर में रहने वाला शरीर से पृथक् जीव पुनः आत्मा है। अरे जढ़ जीव! तू अपना अविनाशी रूप तो जान-देख! इस विनाशशील शरीर मात्र में फँस कर क्यों विनाश को प्राप्त हो रहा है?

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं! आप जीव जो पहले भगवन्मय मुक्ति और अमरता से युक्त परमशान्ति और परम आनन्द वाला ब्रह्म ज्योति थे जिससे पृथक् होकर, गिरकर यानी पतित होकर स्थिर शान्ति और आनन्द से युक्त चिदानन्द-ब्रह्मानन्द वाला ब्रह्ममय जीव बने। पुनः ब्रह्ममय से पृथक् होकर, गिरकर अथवा पतित होकर आनन्द वाला शरीरमय जीव बन गये। पुनः उसी पृथक् एवं पतित रूप होता हुआ सभी दुःखों के घर, सभी विकारों की कोठरी, सभी मलों की कोठरी, क्षणिक एवं विनाशशील केवल शरीर बन गये। अब आप सोचिये कि यदि आप मान लीजिये कि आप शरीर ही हों तो शरीर को जिस सम्पर्क में रखियेगा, वैसा ही तो यह बनेगी। तो आप शरीर पर भी तो ध्यान दें। शरीर को आप जैसा रखेंगे वैसी ही रहेगी। जहाँ आप चाहेंगे वहीं यह जायेगी। जो आप चाहेंगे वही यह करेगी। जिसके सम्पर्क में आप इस शरीर को रखेंगे उसी के दोष-गुण, आचरण-व्यवहार, शक्ति-सामर्थ्य एवं उसी के हानि-लाभ की भुक्त-भोगी बनेगी। यदि आप इस शरीर को खुदा-गॉड-भगवान् को जान-समझ, देख-पहचान करते हुये अद्वैत्तत्त्व बोध प्राप्त करते हुये मुक्ति और अमरता के बोध के साथ ही आप अनन्य भक्ति-भाव से भगवद् सेवा एवं भगवत् प्रेम में इस

शरीर को तपा देते हैं जो शरीर रहते परमशान्ति और परम आनन्द रूप सच्चिदानन्दमय रहते हुये मुक्तपुरुष, अमरपुरुष और सत्पुरुष रूप में रहते हुये अन्ततः शरीर छोड़ने पर आप भगवन्मय जीवात्मा भगवान् में ही विलीन होकर अमरलोक रूप परमधाम को प्राप्त होंगे। यदि आप इस शरीर के रहते हुये भी भगवान् को नहीं जान-समझ-देख-पहचान सके क्योंकि वास्तव में भगवान् की कृपा विशेष के सिवाय भगवान् को कोई जान-समझ-देख-पहचान कर ही नहीं सकता है, तो इसमें मान लिया गया कि आपके चाहते हुये भी भगवान् का सम्पर्क नहीं प्राप्त हो सका, तो यह भी आपका कहना ठीक ही है । क्योंकि भगवान् भू-मण्डल पर तो रहता नहीं है, वह तो सदा-सर्वदा परम आकाश रूप परमधाम में ही सच्चिदानन्द या परमानन्द या सदानन्द रूप में रहता है जो समय-समय पर सत्य सनातन धर्म के संस्थापनार्थ तथा सज्जन पुरुषों के रक्षा-व्यवस्था तथा दुष्टों का दलन करता हुआ पुनः अपने परमधाम को चला जाता है। तो इस प्रकार यदि भगवत् प्राप्ति आप को नहीं हो सकी फिर भी आप को अनन्य भक्तिभाव के साथ भगवद् शरणागत ही सर्वतोभावेन होना-रहना चाहिये । खैर ! यदि इसके बावजूद भी आप भगवद् शरणागत नहीं हो सके तो कम से कम आत्मा या ईश्वर या नूर या सोल या ब्रह्म जो कि बराबर ही जीवों को सम्पर्क लाभ देता हुआ सदा ही संसार और परमब्रह्म के मध्य सम्पर्क बनाये रखता है, तो आप शरीरधारी जीव बन्धुओं को उस आत्मा या ईश्वर या नूर या सोल या ब्रह्म को तो कम से कम जान-समझ-देख-पहचान कर अपने शरीर को आत्मामय या ईश्वरमय या ब्रह्ममय बनाये रखना चाहिये कि शांति और आनन्द रूप चिदानन्द या ब्रह्मानन्द की अनुभूति प्राप्त होता रहे और शरीर छोड़ने पर स्वर्ग-नरक से बच सको तो अपना सम्बन्ध परमात्मा-आत्मा से जोड़ने के बजाय स्त्री, शरीर और सम्पत्ति से जोड़ कर विनाश को ही स्वीकार कर रहे हो ! क्योंकि स्त्री क्या होती है ? भगवदवतार रूप श्रीराम जी के 'मत' को भी देख ही चुके हैं । तो आप सभी अवगुणों, दुःखों, माया-मोह-ममता-वासना आदि के साक्षात् मूर्ति रूप सभी दुःखों के खान रूप औरत से सम्बन्ध जोड़ कर सुख-शान्ति से तो बंचित हो ही जाओगे, विनाश को भी प्राप्त होते देर नहीं लगेगी। अरे मूढ़ ! अब से भी चेत । भगवान् से कर हेत ।।

स्त्रियाँ शोषक एवं पुरुष शोषित

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! प्रस्तुत शीर्षक से हो सकता है कि पत्नी प्रधान पति अर्थात् पत्नि-भक्त हिजड़ों को तथा महिलाओं को कष्ट होवे, परन्तु यह कोई कष्ट की बात नहीं होनी चाहिये । हालाँकि स्त्रियों से अधिक कष्ट स्त्रियों में आसक्त स्त्री प्रधान पुरुषों (हिजड़ों) को ही होगी तथा मुझे यह भी लग रहा है कि वे सभी प्रायः इस कटु सत्य बात के लिये स्त्रियों से माफी भी माँगेंगे ही । खैर सत्य सत्य ही होता है । इससे यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिये कि मैं स्त्रियों का विरोधी हूँ। बल्कि असलियत यह है कि मैं किसी का विरोधी नहीं हूँ। सत्य का पुजारी एवं यथार्थता के पोषक होने के कारण ही मुझे ऐसी कटु सत्य बातों का प्रयोग करना पड़ता है । आप इसे सूझ-बूझ के साथ समझते हुए पढ़ने की कोशिश करें तो यथार्थता से परिचय आप को भी हो ही जायेगा और यथार्थता जानने के पश्चात् ही यदि आप मुझको कुछ कहें, तो अच्छा होगा । महत्व भी उसी बात का होता है जिसे जानने-समझने के पश्चात् कहा-सुना जाय ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, माया, वासना सभी प्रकार के कष्टों तथा सभी दुःखों आदि से युक्त रूप साक्षात् मूर्ति स्त्रियाँ होती हैं जिसके सम्पर्क में आने वाले पुरुष को इन अपकारों से युक्त होकर जन्म-जन्मान्तर भुगतना ही होता है, क्योंकि जैसे ही आप माता के गर्भ में शिशुस्थ जीव के रूप में आयें तो भगवद् सम्बन्ध विच्छेद होकर आप भगवान् से उपलब्ध होने वाले उपलब्धियों से बंचित हो गये । पुनः जब गर्भ से बाहर शारीरिक माता-पिता के सम्पर्क में आये तो ब्रह्म से सम्पर्क भी आपका समाप्त हो गया और ब्रह्म से होने वाले उपलब्धियों से भी आप वंचित हो गये। तत्पश्चात् जैसे ही आप विवाह के द्वारा स्त्री-सम्पर्क में आयेंगे वैसे ही आपका माता-पिता, भाई-बन्धु से भी सम्पर्क टूटने लगता है और उनसे मिलने वाली ममता-प्यार आदि से भी वंचित हो जाना पड़ता है । सोचें तो क्या यह सत्य नहीं है ।

अन्ततः देखें कि जब आप स्त्री रहित (अविवाहित) थे, तो आप स्वतन्त्र थे ।

जब जैसे रहने की इच्छा हुई रहे, जब जहाँ जाने की इच्छा हुई गये, जब जो खाने-पीने, जानने-देखने की इच्छा हुई तब वह खाये-पीये, जाने-देखे। अर्थात् स्वच्छन्द जीवन जीते थे। जो कमाते थे, वह आपके लिये पर्याप्त होता रहता था। किसी प्रकार की भी समस्या प्रायः आपके पास नहीं थी, कोई खास कमी भी नहीं थी। कमाते और ठाट से खाते-पीते मस्त पड़े रहते थे। तो बन्धुओं ! थोड़ा भी तो सोचो-समझो। क्योंकि यहाँ पर मैं अपने उन विवाहित बन्धुओं से जानना चाहता हूँ कि क्या ऐसी बात विवाह के पूर्व नहीं थी ? क्या विवाह के पश्चात् भी आप वैसे ही हैं जैसे कि अभी-अभी ऊपर स्वच्छन्दता वाले जीवन हेतु बताया गया है। क्या आज भी आप खाने-पीने, कहीं आने-जाने, रहने आदि में स्वच्छन्द हैं ? क्या कमी आदि नाम की कोई समस्यायें आपके पास नहीं हैं ? जरा सोच कर आप ही बतायें कि क्या ये उपर्युक्त बातें सही ही नहीं हैं ?

भाव का शोषण

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! यहाँ पर आप सर्व प्रथम स्त्रियों द्वारा हो रहे पुरुषों के शोषण में भाव शोषण को इस पैरा में देखा-जाना-समझा जायेगा। बन्धुओं ! थोड़ा-बहुत आप भी सोचते-समझते हुए निर्णय लेंगे। आँख मूँद कर कुछ बोलने न लगेंगे तो जानेंगे और देखेंगे तथा पायेंगे भी कि जीवन में सबसे सबसे महत्वपूर्ण कोई चीज अगर है तो अपना भाव है। अपने 'भाव' से ही आपका महत्व बढ़ता-घटता एवं उत्थान-पतन को प्राप्त होता है। आप अपने भाव से ही संसार को वश में किये तो क्या किये; भगवान् तक को भी भाव से ही वश में किया जाता है। और भगवान् भाव से ही, मात्र केवल भाव से ही वश में बिना किसी हिचकिचाहट के ही हो जाते हैं। अब थोड़ी देर के लिये 'भाव' की कीमत तो लगायें, तो पता लगेगा 'भाव' अनमोल होता है। क्योंकि जिस भाव के द्वारा भगवान् तक भी वश में आसानी से हो जाता है, खुशी-खुशी वश में हो जाता है। उस भाव की कीमत धरती क्या, पूरे सृष्टि में शारदा-शेष-महेश को भी कह दिया जाय तब भी लाख-कोटि शारदा-शेष-महेश भी 'भाव' की कीमत नहीं लगा सकते हैं। आप बन्धुओं जरा भी तो सोचें कि जिस भाव से आप आसानी से भगवान् को वश में कर सकते हैं, इसमें तो कभी भी किसी को सन्देह ही नहीं हो सकता है। आप उसी अनमोल 'भाव' को मात्र तुच्छ-क्षणिक वासनात्मक तृप्ति हेतु कितनी

आसानी से सभी पापों, सभी अवगुणों एवं सभी कष्टों दुःखों के खान रूपी स्त्री को दे देते हैं; और उसी के वश में होकर उसके नाना समस्याओं के पूरा करने में ही अपने सम्पूर्ण भावों को ही समाप्त कर-करा देते हैं । अपने भावों को स्त्री को समर्पित कर आप मातृ भाव, पितृ भाव, भातृ भाव, समाज भाव से बंचित तो हो ही जाते हैं, और नहीं तो जीव भाव, ब्रह्म भाव और भगवद् भाव से भी बंचित होकर मात्र स्त्री भाव के पीछे-पीछे प्रत्यक्ष मालिक तथा परोक्षः दास के रूप में उस स्त्री के चारों तरफ उसके समस्या पूर्ति में लगे हुए हैं। तुलसी भी अपने भाव को अपनी स्त्री रत्नावली को दे दिये थे, तो उनकी औरत ने ही उनके व्यसनी रूप और निर्लज्जता को धिक्कारा, तो तुलसी को सूझ हुआ और वहाँ तुलसी जो व्यसनी और निर्लज्ज की उपाधि पाने वाला, जब उसी भाव को जो पहले स्त्री को दिया था, अब भगवदवतार रूप श्रीराम जी को दे दिया, तो आज वही तुलसी, तुलसीदास होकर भगवान् का दास बनकर आज पूरे संसार में आदर-सम्मान तथा सन्त-महात्मा माने जा रहे हैं ।

सद्भावी बन्धुओं ! रत्नाकर डाकू अपने भाव को माता-पिता, पुत्री-पुत्र, स्त्री-परिवार आदि में दिया था, तो डाकू रत्नाकर कहला रहा था । यदि उस रूप में मर जाता तो आज उसका नाम-निशान तक नहीं रहता । परन्तु वही रत्नाकर डाकू अपने उसी भाव को ब्रह्म के प्रति समर्पित कर दिया तो वह रत्नाकर डाकू महर्षि-ब्रह्मर्षि बाल्मीकि कहलाते हुए आज भी चारों तरफ हैं । भारत जैसे विशाल देश के प्रधानमन्त्री द्वारा उनकी जयन्ती मनायी जाती है, वह भी कितने हजारों साल बाद कि जिसका ठीक-ठीक पता नहीं है । इसी प्रकार उसी भाव को ध्रुव पिता राजा उत्तान पाद को दिया तो दुत्कारा गया, उसी भाव को भगवान् को दिया तो पुचकारा गया । इसी प्रकार प्रहलाद, हनुमान को देख लीजिये कि वही भाव सुग्रीव को दिये थे तो बालि के डर से दर-दर का ठोकर खाते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के साथ छिपे थे और उसी भाव को राम जी को दिये तो देखें ! कि क्या हो गये ? संकट मोचन होकर पुजा रहे हैं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! 'भाव' का कीमत तो लगाना असम्भव के लिए भी असम्भव ही है । परन्तु भाव के महत्व को भी नहीं आँका जा सकता है । मनुष्य कितना जढ़ी एवं मूढ़ होता है कि इतनी महत्वपूर्ण अनमोल वस्तु पाकर कि

जिसके द्वारा भगवान् तक को अपने वश में आसानी से करके ज्ञानी-सत्पुरुष बन जाया जाता है, उसी भाव को स्त्रियों में फँसा-फँसा कर मात्र तुच्छ क्षणिक वासना तृप्ति हेतु उन स्त्रियों की गुलामी में ही अपना सारा समय व्यर्थ में ही गँवा दिया करता रहता है । स्त्री लाख दुत्कारती रहती है फिर भी कामी-जढ़ी पुरुष नहीं सोचता है । अरे जढ़ी एवं मूढ़ गृहासक्त पुरुषों ! अपने इस अनमोल भावको व्यर्थ में क्यों गँवा रहे हो ? कम से कम अब से भी तो चेत कि अपने भाव को उत्थान परक बनाओ, इसे क्रमशः जीव, आत्मा और परमात्मा को समर्पित करते हुए लोक-परलोक दोनों बना लो । यह सुअवसर मत खोओ । लोक में आत्मा को भाव समर्पित कर आध्यात्मिक महापुरुष तथा परमात्मा (भगवान्) को भाव समर्पित करते हुए शरीर रहते ही मुक्ति और अमरता बोध के साथ ही साथ परमशान्ति और परमानन्द रूप सच्चिदानन्द का बोध प्राप्त करो और शरीर छोड़ने पर आत्मा या ब्रह्म तथा परमात्मा या परमब्रह्म या भगवान् को समर्पित किए हो, तो परम पद या अमर लोक अथवा भगवद् धाम रूप परमधाम प्राप्त करते हुए सायुज्य मुक्ति प्राप्त करो । स्त्रियों के माया जाला में फँस कर अपने अनमोल भाव को व्यर्थ में ही गँवा कर लोक-परलोक मत गँवाओ । थोड़ा भी तो गौर करो इन स्त्रियों से तुझे क्या मिल सकता है ? ये एक मात्र स्वार्थ की भूखी होती हैं । इनके स्वार्थों की पूर्ति करते रहो तो तुम बहुत अच्छे हो । तुम्हारे भावों को काम-वासना, ममता-मोह के द्वारा अपने में जकड़ कर तुम्हारा विनाश करा देंगी । अब से सभी सम्भलो । महापुरुषों को देखो कि क्षणिक साँसारिक सुख का त्याग कर क्या हो गये ? जितने पर भी अगर न चेत पाओ, तब तो तुम्हारे जैसा अभागा, पतित एवं घृणित और कोई नहीं ।

पारिवारिक भार वहन
पुरुषों की भ्रामक मजबूरी

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! जब पुरुष का विवाह हो जाता है, तब पुरुष परिवार वाला हो जाता है, हालाँकि परिवार के अविवाहित सदस्य भी पारिवारिक ही कहलाते हैं परन्तु वास्तव में पारिवारिक (परिवार वाला) वैवाहिक व्यक्ति ही अधिक सार्थक लगता-होता है । विवाह के पश्चात् प्रारम्भ में तो युवावस्था की तेजी और शुरुआत होने के कारण साल-दो-तीन-चार-पाँच तक कोई हद से हद परिवार को अपना सुख का साधन मानता रहता है, परन्तु कुछ ही समय बाद जब परिवार का भार अपने ऊपर पड़ता है तब आगे-पीछे दिखायी देने लगता है । सही में देखा जाय तो यह शब्द कि पारिवारिक भार अपने आप में परिवार को भार बताते हुए अपनी वास्तविकता अथवा यर्थाथता को सार्थक बनाता है क्योंकि परिवार तो वास्तव में भार होता ही है । परिवार वाहक सच में ही भार-वाहक (गधा जैसा) होता ही है जिस प्रकार गधा बेचारा जो कुछ उसके पीठ पर लाद दीजिए वह उसे ढोते-ढोते धीरे-धीरे मंजिल लक्ष्य तक ले ही जाता है । ठीक उसी प्रकार पारिवारिक पुरुष स्त्री-पुत्र-पुत्री, माता-पिता, भाई-बहन, सगा-सम्बन्धी तथा हित-मित्र आदि का समयानुसार क्षमतानुसार आये हुए भार को धीरे-धीरे मरण पर्यन्त लक्ष्य तक लेकर भार वहन को अपना मजबूरी मानता हुआ पहुँच जाता है, ऐसे पारिवारिकों को मौत के पश्चात् भी शान्ति नहीं मिल पाती है, जीवन में तो मिलना ही नहीं है।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! साँसारिकों द्वारा यह भ्रामक प्रचार कर-करा दिया गया है कि विवाह के पश्चात् परिवार का भार वहन करना परिवार वाले की मजबूरी होती है । वही मजबूरी जो है, पुरुषों को जीवन पर्यन्त निबाहना पड़ता है । हम तो यही जानते हैं कि प्रायः निन्यानवे दशमलव नौ प्रतिशत व्यक्ति ही विवाह के पाँच वर्ष पहुँचते-पहुँचते परिवार से प्रायः आदमी ऊब सा जाता है । यदि कोई मजबूरी न रहे, लोक-लाज का डर-भय न रहे तो आदमी परिवार को

बेखटके छोड़ देगा। परन्तु लोक-लाज का डर-भय ही पारिवारिक गाड़ी को आगे खिंचवाता है। बहुतों को प्रायः यह कहते हुए सुना जाता है कि भाई हम तो चाहते हैं कि धरम-करम हेतु वैराग ले लूँ परन्तु पारिवारिक जाल में ऐसा फँस गया हूँ कि मेरे वश की तो बात ही नहीं है। यह कुछ के लिए तो परिवार जकड़न है क्योंकि वह चाहता है परन्तु समाज परिवार के कारण उस पर विशेष दबाव डालने लगता है कि कुछ भी करो, कहीं जाओ, अपना परिवार अपने साथ लेते जाओ। तुम्हारे परिवार का कौन जिम्मेदार होगा। तुम उसका हाथ पकड़े हो, तुम निभाओ। परन्तु असलियत यह है कि किसी भी व्यक्ति का दुःख-सुख को वास्तव में देखा जाय, तो किसी दूसरे व्यक्ति के वश की बात दुःख से सुख में अथवा सुख से दुःख में पहुँचाने का अधिकार या हक एवं क्षमता नहीं होता है। विधाता का जो विधान है, उसे पूरा होना ही है, चाहे हमें रोकर पूरा करना पड़े या हँस कर, विधाता का विधान पूरा होता ही है। मनुष्य तो एक निमित्त मात्र होता है, अन्यथा कर्त्ता-भर्त्ता-हर्त्ता तो एक मात्र परम प्रभु परमेश्वर ही होता है।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! पारिवारिक भार वहन की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेना अपने को अज्ञानी, जढ़ एवं मूढ़ ही साबित करना है। क्योंकि गर्भ में शिशु का भार वहन किसने किया था ? वहाँ पर अन्न-जल आदि की व्यवस्था किसने किया ? तो क्या जिसने उस स्थिति-परिस्थिति में शिशु की देख-भाल, रक्षा-व्यवस्था किया था आज नहीं करेगा ? जरूर करेगा, जरूर करेगा। करता भी कौन है ? वही तो, दूसरा कौन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं। बन्धुओं ! पारिवारिक भार वहन की जिम्मेदारी का भार अपने ऊपर लेना निरा एक हास्यास्पद बात लग रही है। तो आप कह सकते हैं कि कैसे ? तो इसके जवाब में तो सबसे जबर्दस्त बात यही दिखलायी दे रही है कि जिस मनुष्य को अपने विषय में ही पता नहीं है कि वह कब तक जीवित रहेगा यानी उसका श्वाँस कब बन्द हो जायेगा। वह मनुष्य भी कहे कि दूसरे की यानी परिवार की जिम्मेदारी हमारे ऊपर है कितनी हास्यास्पद बात होगी। जिसके अपने जीव और श्वाँस का ही ठिकाना न हो, वही कहे कि हम न रहें तो हमारा परिवार कैसे रहेगा, बर्बाद हो जायेगा। उसका कोई देखभाल करने वाला नहीं है तो उस बन्धु को कौन समझाये कि पारिवारिक जाल में फँसकर आप खुद बर्बाद हो रहे हैं आप दूसरे को आबाद

क्या करेंगे ? जिसको भगवान् बर्वाद करना चाहे उसको आबाद करने वाला दुनिया क्या कहा जाय, सृष्टि में भी कोई नहीं मिलेगा और जिसको भगवान् आबाद करना चाहे उसको सृष्टि में कोई बर्वाद करने वाला भी नहीं मिल सकेगा । इसलिये हम तो आप पाठक बन्धुओं से इतना ही निवेदन कर सकते हैं कि आबाद और बर्वाद वाली जिम्मेदारी वाली बात आप द्वारा अपने पर स्वीकार करना यह एक निरा अज्ञान, मूढ़ एवं जड़ता के साथ ही साथ आपके पागलपन को ही जता रहा है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! यदि बड़े-बड़े पहुँचे हुए महापुरुषों के जीवन वृतान्त को देखा जाय, तो पता चल जायेगा कि वास्तविकता क्या है ? जैसे कि -- रत्नाकर डाकू जब तक पारिवारिक भार वहन करने की मजबूरी मानकर चलता रहा, तब तक तो न जाने कितनी डकैतियाँ, कितने लूट, कितनी हत्याएँ, कितनी राहजनी आदि किया करता था । परन्तु सप्तर्षियों द्वारा जैसे ही उसे यह जानकारी प्राप्त हुई कि पारिवारिक भार वहन के लिये जो तुम अपने को मान बैठे हो और पूर्ति के लिये नाना कुकर्मों, नाना पापों को करते रहते हो । तो क्या समझते हो कि तुम्हारा कुकर्म और पाप में तुम्हारा परिवार साथ दे सकता है ? तुम्हारे पापों में से थोड़ा भी बाँट सकता है ? तो रत्नाकर डाकू ने पता लगाया तो पता चला कि जो उसके कमाई का उपभोग कर-करा रहे हैं वे भी उसके पाप में भागी नहीं बन सकते हैं । तब इसी बात पर रत्नाकर डाकू सप्तर्षियों की यह बात मानकर कि पारिवारिक भार वहन की मजबूरी मान लेना, सिर्फ भ्रम के सिवाय और कुछ नहीं है । तत्पश्चात् रत्नाकर डाकू अपने भाव और श्रम-सेवा को परिवार पालन में लगाया था, उसे परिवार से मोड़ कर ब्रह्म में लगा दिया, तो वही रत्नाकर डाकू अब एक ब्रह्मर्षि बाल्मीकि हो गया । यदि इतने पर भी आपको चेत न हो तो भगवान् ही जानें । ऐसी बातें प्रायः थोड़ा कम-वेश कि पारिवारिक भार वहन करना मजबूरी और जिम्मेदारी नहीं है बल्कि सबसे बढ़कर जिम्मेदारी अपने जीव को पारिवारिक साँसारिक बन्धन से मुक्त कराते हुए अन्य जीवों को मुक्त कराना ही है । गौतम बुद्ध, हनुमान, यीशु, मुहम्मद, तुलसी, कबीर, स्वामी विवेकानन्द, आद्य शंकराचार्य आदि को देखें ।

पुत्र मुक्ति में सहयोगी नहीं; बन्धन का हेतु

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! ऐसा सुना-देखा जाता है कि समाज इस भ्रामक प्रचार का शिकार बन चुका है कि पुत्र उत्पन्न करना पुरुष हेतु एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि पुत्र के पिण्डदान से ही पितरों को मुक्ति होती है। जिसके कारण मुक्त नहीं होते, बल्कि नरकों में विभिन्न यातनाएँ झेला करते हैं अर्थात् जिसके पुत्र नहीं, वह अभागा है, सुबह-सुबह उसका मुख देखना पाप है आदि धारणा समाज को इतना ग्रसित किए हुए है कि इसके लिए प्रायः लोग इतने चिंतित, इतने परेशान रहते हैं कि जिसकी सीमा नहीं है। मात्र पुत्र हेतु ही नाना तीर्थों की यात्रा एवं स्नान, नाना प्रकार के टोटका, नाना प्रकार के तन्त्र-मन्त्र तथा सिद्ध महात्माओं के यहाँ जाना और पुत्र प्राप्ति की माँग करना आदि समाज को अपने में इतना ग्रसित किए हुए है कि इससे उबरना मुश्किल सा काम लगता है। आज के इस घोर नास्तिकता के युग में भी यह भ्रमपूर्ण धारणा अभी जनमानस में इतना छाया हुआ है कि लाखों-लाख आदमी आज 'गया' में पितरों को पिण्डदान देने के लिए पहुँचते हैं। कर्म काण्ड के इस भ्रामक धारणा से समाज को उबारना भी एक साधारण काम नहीं है। थोड़ा भी आदमी नहीं सोचता है कि मनुष्य खुद, स्वयं मुक्ति का उपाय शरीर रहते नहीं कर-करा लिया तो उसके मरने के बाद उसके पुत्र के पिण्डदान से वह मुक्त हो जायेगा ? कदापि नहीं ! जहाँ तक हमारी धारणा है कि करोड़ों जन्मों तक पुत्र दर पुत्र यदि पिण्ड दान देता रहे, तब भी मर कर गए हर नारकीय जीवों को मुक्ति की बात नहीं की जा सकती है। यह (पिण्ड दान) कर्म एक थोथा एवं हास्यास्पद जड़ता एवं मूढ़ता के सिवाय कुछ नहीं है।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! मुक्ति की कल्पना पुत्र उत्पन्न करने तथा उसके पिण्डदान से कदापि सम्भव नहीं, मुक्ति तो एक मात्र तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान से ही मिलती या होती है। तत्त्वज्ञान या भगवद् ज्ञान के वगैर मुक्ति की कल्पना ही व्यर्थ है। एक नहीं कोटि-कोटि बार जनम-मरण होवे तो क्या ? एक नहीं कोटि-कोटि कर्म किया जाय तो क्या ? परन्तु मुक्ति की कल्पना तत्त्वज्ञान या भगवद्ज्ञान के बिना सोचना तक अज्ञान है मिलने की तो बात ही नहीं है। परिवार

एवं सन्तान सदा बन्धन का कारण एवं बन्धन का साधन मात्र रहे हैं, मुक्ति का नहीं । पुत्र तो माता-पिता (पति-पत्नि) के बीच दोनों प्यार और ममता को अपनी ओर मोड़ कर दोनों को माया-जाल में फँसाने का एक तीसरा साँसारिक साधन है । सृष्टि के आरम्भ में जबकि जनसंख्या बढ़ाने का अभियान चल रहा था, उन्हीं अभियान में यह एक अभियान सूत्र था कि पुत्र उत्पन्न करना सबके लिए अनिवार्य आवश्यकता है । चूँकि मुक्ति ही मानव योनि का चरम और परम लक्ष्य है, इसलिए उस अभियान में पुत्र उत्पन्न करना मुक्ति का साधन है, ऐसा प्रजापतियों ने घोषणा और प्रचार कर दिया जिसमें मानव आज भी फँस कर अति परेशान हैं । जिस प्रकार आज बन-वृक्षों के कमी पड़ जाने के कारण वन-वृक्ष लगाओ अभियान में नाना प्रकार के अभियान सूत्र चला कर वन-वृक्षारोपण रूपी लक्ष्य की पूर्ति की जाती है । जैसे 'एक वृक्ष, दस पुत्र समान'। पुनः वृक्ष लगाओं; पुण्य कमाओ ।' 'वृक्ष लगाओ; मुक्ति पाओ ।' आदि। प्रजापतियों (ऋषियों) ने संसार की रचना एवं संसार में मानव वृद्धि हेतु यह अभियान चला था कि पुत्र के वगैर मुक्ति नहीं । ऐसा अभियान प्रजापतियों ने चलाया था क्योंकि प्रजा उत्पन्न एवं प्रजा वृद्धि ही उनका लक्ष्य था और नारद, सनकादि आदि ब्रह्मर्षियों व देवर्षियों ने प्राणियों को मुक्ति हेतु उत्प्रेरित कर रखा था, तो प्रायः लोग सात्त्विक मति-गति के अधिक थे । इसलिए पारिवारिक बन्धन को तोड़-तोड़ कर मुक्त जीवन बशर करते थे, अधिकतर तपस्या करने लगते थे यानी पारिवारिक माया-मोहासक्ति नगण्य सी रह गयी थी और वंश वृद्धि के द्वारा संसार में मानव उत्पत्ति और मानव विकास (बढ़ोत्तरी-जनसंख्या) प्रजापतियों का लक्ष्य विफल हो गया था । तब उन प्रजापतियों ने मुक्ति हेतु पुत्रोत्पत्ति तथा पिण्डदान की नयी प्रक्रिया चालू कर-करा कर एक साधन अभियान चलाया चूँकि प्रजापति ब्रह्मा के सन्तान होने के कारण सिद्ध और तत्कालीन समाज में मान्य एवं प्रतिष्ठित थे । इसीलिए उनके इस रहस्य को जाने वगैर कि प्रजा उत्पत्ति और जनसंख्या वृद्धि वाला इन लोगों का लक्ष्य विफल हो गया है, इसीलिए अपने लक्ष्यपूर्ति हेतु ही ये लोग अभियान सूत्र चला रहे हैं, आँख मूंद कर उनके बातों को मान कर उनका अन्धानुकरण करने लगे । आप बन्धुओं एक उदाहरण और देखें जनसंख्या अधिक हो जाने पर जिस प्रकार आज जनवृद्धि रोकने के लिए अनेकानेक सघन अभियान सूत्रों के साथ

प्रचारित प्रसारित हो रहे हैं, जिससे प्रभावित होकर लोग वंश वृद्धि को सीमित करते जा रहे हैं, ठीक ऐसा ही उस समय ठीक इसके उल्टा उस समय अभियान चला था । या तो उसके उल्टा इस अभियान को मानकर बात समझें या इसके उल्टा उस अभियान को मान कर बात समझें । दोनों बात एक ही है । वह कमी से वृद्धि का अभियान व अभियान सूत्र चला था और वृद्धि से कमी का अभियान एवं अभियान सूत्र चल रहा है । अर्थात् पुत्र मुक्ति हेतु न तो आवश्यक होता है और न अनावश्यक ही । बन्धुओं ! परिवार एवं पुत्र सदा ही ममता-मोह रूपी माया के जाल-पाश बन्धन हैं । परिवार एवं पुत्र सदा ही बन्धन के साधन होते हैं मुक्ति के नहीं; तथा पितरों हेतु पुत्र द्वारा पिण्डदान की क्रिया-प्रक्रिया समाज को फँसाने वाले मोह-पाश का ही एक अंग है । अन्यथा पिण्डदान से कुछ होता जाता नहीं । मुक्ति का हेतु पुत्र एवं पिण्डदान कदापि नहीं होता है, बल्कि मुक्ति का हेतु तो एकमात्र तत्त्वज्ञान या भगवद्ज्ञान ही होता है, अन्यथा कोई नहीं । योग से भी मुक्ति नहीं होती, और को कौन कहे ।

पुत्र से नाम-यश की आशा भी व्यर्थ ही

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! समाज में दूसरी भ्रामक एवं प्रतिकूल धारणा यह फैली हुई है कि पुत्रोपत्ति से ही नाम-यश की वृद्धि होती है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी पुत्र से ही नाम चलता है, जिसको पुत्र नहीं, उसका नाम संसार में बुत यानी समाप्त हो जाता है । इस प्रकार की प्रतिकूल एवं भ्रामक धारणा भी समाज में इतना गहरे रूप से बैठ गया है कि इस सामाजिक प्रतिकूल धारणा से भी समाज को उबार कर समाज कल्याण के अनुकूल बनाना भी आसान काम नहीं रह गया है । इस प्रतिकूल धारणा को भी अनुकूल बनाते हुए समाज को कल्याण पथ पर ले चलना भी इस जमाने में प्रभु पर ही आधारित है । यह बात सही ही है कि दुनिया अनुकूल एवं प्रतिकूल, पक्ष एवं विपक्ष, असत्य एवं सत्य, जड़ एवं चेतन, दोष एवं गुण, अधर्म एवं धर्म, अन्याय एवं न्याय, अनीति एवं नीति, स्त्री एवं पुरुष, रात एवं दिन, अंधेरा एवं उजाला, झूठा एवं सच्चा, बुराई एवं अच्छाई आदि आदि दोनों के संयुक्त मेल-मिलाप का रूप ही दुनिया है, फिर भी दोनों का अपना-

अपना कार्य क्षेत्र होता है । दोनों एक दूसरे पर सदा हावी (प्रभावी) होना चाहते एवं समयानुसार होते भी रहते है । दोनों ही जब तक अपने-अपने कार्य क्षेत्र में रहते-चलते-करते-भोगते हैं, तब तक तो सामान्य तरह से संसार यानी साँसारिक गति-विधि चलती होती रहती है । परन्तु जैसे ही एक दूसरे पर बढ़ने या प्रभावी होने की कोशिश करना एवं होड़ लगाना प्रारम्भ करते हैं, तब ही सामाजिक या साँसारिक गड़बड़ी या हलचल होना शुरु हो जाता है । हालाँकि यह विरोध, संघर्ष एवं लड़ाई आज की ही नहीं अपितु प्राचीन काल आदि सृष्टि से ही होती चली आ रही है; अनेकानेक भीषण संघर्ष, भयानक युद्ध, एवं रक्तपात से युक्त घटनाएँ घट चुकी हैं उदाहरणार्थ देवासुर संग्राम, राम-रावण युद्ध, महाभारत, प्रथम-विश्व युद्ध एवं द्वितीय विश्व युद्ध आदि । आज भी उसी स्थिति के अन्तिम दौर पर पहुँच चुकी है । तृतीय विश्व-युद्ध की तैयारी भी पूरी हो चुकी है । पुनः लग रहा है कि कोई दूसरा नया श्री कृष्ण किसी दूसरी नई श्रीमद्भगवद्गीता की तैयारी में लगा है । इसीलिए यह तृतीय विश्व युद्ध भी तब तक के लिए शायद रुका हुआ है, जैसे ही श्रीमद् भगवद्गीता पूर्ण हो जायेगी, वैसे ही पुनः तृतीय विश्व युद्ध का बिगुल बज जायेगा। लग रहा है कि वह क्षण भी अब दूर नहीं है कि नई गीता पूर्ण हो और बिगुल बज जाय। यह हमेशा को नीति-रीति रही है कि पहले पहल असत्य ही सत्य पर, अधर्म ही धर्म पर, अन्याय ही न्याय पर, अनीति ही नीति पर धावा बोलते हैं, आक्रमण करते हैं, उन पर हावी प्रभावी होते जाते हैं, जिसका कुपरिणाम यह होता है कि असत्य सत्य को, अधर्म धर्म को, अन्याय न्याय को, अनीति नीति को ही प्रायः समूल समाज या संसार से समाप्त कर-करा देना चाहते हैं । परन्तु ये चारों-- सत्य, धर्म-न्याय-नीति ही भगवान् के चार चरण होते हैं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! सत्य-धर्म-न्याय-नीति; असत्य-अधर्म-अन्याय एवं अनीति के जोर-जुल्म, अत्याचार-भ्रष्टाचार आदि क्रूरतापूर्ण धावा, संघर्ष, आक्रमण कर समाप्ति की अवस्था के करीब पहुँचा देते हैं और सत्य-धर्म-न्याय-नीति समाप्ति के अन्तिम स्थिति में पहुँच कर अन्तिम श्वाँस-निःश्वाँस लेना शुरु कर देते हैं, तत्पश्चात् अति दारुण्य एवं करुण क्रन्दन आसमान को चीरता हुआ परम आकाश रूप परमधाम में स्थित सत्य-धर्म-न्याय-नीति के पोषक एवं संरक्षक रूप सर्व शक्ति-सत्ता सामर्थ्य रूप

परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म तक पहुँचता है, तब वे वहाँ से अपनी शक्तियों के साथ भू-मण्डल पर अवतरित होकर किसी मानव शरीर को धारण कर उसी के माध्यम से सर्व प्रथम यत्र-तत्र सर्वेक्षण-निरीक्षण का कार्य सम्पादन कर परीक्षण का कार्य आरम्भ करते हुए अपना असल रूप परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म को तत्त्वज्ञान रूप भगवद्ज्ञान रूप सत्य ज्ञान द्वारा अपने श्रद्धालु एवं निष्कपटी अनन्य भक्तों के बीच प्रकट करते हुए उन्हीं भक्तों, सेवकों तथा अनन्य प्रेमियों के माध्यम से अपने अवतरण की घोषणा समाज में कर-करवा देते हैं कि परम ब्रह्म परमेश्वर का परमधाम से भू-मण्डल पर अवतार हो चुका है। जो कोई जिस प्रकार जानना-देखना एवं परीक्षण करना चाहता है, कर सकता है । इस प्रकार क्रमशः शान्तिमय ढंग से जानने-देखने तथा बात-चीत करते हुए बोध के साथ ही पहचानने की घोषणा होती है; पुनः समझौता पूर्व कि हमारे सत्य-धर्म-न्याय-नीति स्तर तक समझौता करके जानने-देखने तथा बात-चीत करते- कराते हुए कार्यो के द्वारा पहचानने का कष्ट करें, तत्पश्चात् बार-बार सूचना, चेतावनी देते हुए घोषणा कर देते हैं कि ठीक है, आप जैसे चाहें, वैसे ही परीक्षण करें और संघर्ष एवं युद्ध का क्रम प्रारम्भ हो जाता है । इस प्रकार अब तक की तो ही बात रही है कि परम प्रभु के अवतार रूप अवतारी शरीर के द्वारा परम प्रभु ही असत्य-अधर्म-अन्याय एवं अनीति को सफाया (समाप्त) करके पुनः सत्य-धर्म-न्याय-नीति को स्थापित करते हुए सत्पुरुषों का राज्य कायम करते हैं । पुनः इस बार भी अन्ततः यही होगा यानी सत्य-धर्म-न्याय-नीति ही संस्थापित होगी तथा पुनः पूरी दुनियाँ पर ही सत्पुरुषों का राज्य कायम होगा । होना ही है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! समाज में फैली यह धारणा कि पुत्र से ही समाज में नाम-यश कायम होता है असलियत के बिल्कुल ही प्रतिकूल है क्योंकि बन्धुओं कम से कम आप भी तो थोड़ा-बहुत देखें कि पुत्र वाले किसी गृहस्थ व्यक्ति का नाम यदि बहुत चलता है तो तीन से चार पीढ़ी (वंश) तक पाँचवीं पीढ़ी तक तो नाम ऐसा मिट जाता है कि चाह कर भी खोजने पर नहीं मिल पाता है । आप बन्धु ही बतायें कि क्या यह सत्य बात नहीं है ? पुनः यश की बात है तो पुत्र से या पौत्र या प्रपौत्र से किसी को यश नहीं मिलता है । यश-अपयश का भागी

मनुष्य अपनी कृतियों के आधार पर ही पाता है । यदि कोई कृति न हो तो पुत्र कितना यश दे सकता है । इस प्रकार पुत्र से नाम-यश दोनों का क्षणिक लाभ जरूर मिलता है परन्तु स्थाई नहीं । स्थाई रूप में दूरदर्शिता से देखा जाय, तो यश-अपयश स्थाई अपनी ही वृत्ति-कृति से प्राप्त होता है। पुत्र ही पिता के शरीर छोड़ने या मरने के बाद नाम कागजातों से समाप्त कराता है । पुत्र पिता का नाम कहीं चढ़वाता नहीं है अपितु सभी स्थानों से समाप्त करवा देता है । तब भी यह मानना कि पुत्र ही से नाम समाज में चलता है बिल्कुल ही प्रतिकूल एवं भ्रमपूर्ण है । हाँ, जब पुत्र महापुरुष एवं सत्पुरुष हो जाता है तो उसके पूर्वज एवं वंशज नाम-यश पाते हैं ।

परिवार एवं पुत्र बन्धनकारी एवं विनाशक

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! परिवार एवं पुत्र को किसी भी परिस्थिति में मुक्ति का हेतु मानना अपने अज्ञान एवं जड़ता-मूढ़ता को अपने द्वारा ही स्वीकार करना होगा । परिवार एवं पुत्र जाने-अनजाने पुरुष पर एक अत्यन्त ही बोझिल-बोझ या भार होता है जिसको लेकर अपने जीवन के लक्ष्य रूप सर्वोच्च प्राप्ति रूप मुक्ति-अमरता के बोध के साथ ही अद्वैत्तत्त्वबोध रूप मुक्ति बोध तक पहुँचना बिल्कुल ही असम्भव बात है, हाँ अपवाद स्वरूप एक आध अवश्य पहुँचे हैं, परन्तु इसे पहुँचने का सहज सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है। यह पहुँचना अपवाद स्वरूप ही रह सकता है । हाँ, यह बात उस समय मात्र उतने समय के लिए सहज सिद्धान्त रूप में लागू एवं स्वीकार हो सकता है जिस समय परम आकाश रूप परम धाम से परम प्रभु का भू-मण्डल पर अवतरण हुआ हो और वह अवतारी शरीर जितने को अपने सम्पर्क, अपने तत्त्वज्ञान द्वारा भक्ति के सम्पर्क तथा जितने उनके साथ भाव-भक्ति-सेवा-प्रेम में लगे रहते हैं, वे चाहे जैसे भी रहें यदि परम प्रभु को स्वीकार हो तो परम प्रभु के भू-मण्डल पर रहने तक तो प्रायः वे सभी ही मुक्ति के योग्य हो जाते हैं, जिस पर परम प्रभु की दया दृष्टि हो जाती है । परन्तु उस समय के पश्चात् पुनः मुक्ति और अमरता का स्थाई सहज सिद्धान्त ही लागू रहता है अर्थात् अनन्य भगवद् भक्त, अनन्य भगवद् सेवक एवं अनन्य

भगवद् प्रेमी ही मुक्ति और अमरता को प्राप्त कर सकता है । अन्यथा कर्म काण्ड चाहे जैसा भी हो उससे मुक्ति और अमरता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, प्राप्ति की तो बात ही नहीं है ।

इस प्रकार परिवार एवं पुत्र माया-मोह-ममता-वासना रूप बन्धन को ही उत्पन्न एवं विकसित करने वाले होते हैं । परिवार एवं पुत्र के बन्धन को काटे वगैर मुक्ति की बात सोचनी ही व्यर्थ होती है । परिवार एवं पुत्र भी कायम रहे और मुक्ति भी मिले ऐसे सोचने व चलने वाले को एक ही उदाहरण से विभूषित किया जा सकता हैं कि ग्राह (घड़ियाल) को सूखी लकड़ी जान-मान कर नदी पार करने जैसी बात ही होती है । अर्थात् लकड़ी जान-मान कर घड़ियाल को पकड़ने जायेंगे दरियाव (नदी) पार करने के लिए तो वह लकड़ी रूप घड़ियाल उनका आहार बना कर खा कर समाप्त ही कर देगा, पार की बात ही नहीं रह पायेगी, बीच में ही समाप्त हो जाना पड़ेगा । ठीक यही स्थिति परिवार को साथ-साथ पकड़े रहकर मुक्ति और अमरता को प्राप्त करने की चाह रखने वाले बन्धुओं की भी होती है । इसलिए हम तो उन समस्त बन्धुओं से बार-बार साग्रह निवेदन करेंगे कि परिवार के तुच्छ एवं क्षणिक सुखाभास को तथा पुत्रादि के ममता-मोह रूप बन्धन को पीछे छोड़ कर ऊपर उठने हेतु अपने समक्ष उपस्थित भू-मण्डल पर अवतरित परम प्रभु को सर्वतोभावेन समर्पण भाव में रहते हुए भगवद् शरणागत होकर परम शान्ति और परमानन्द के साथ ही मुक्ति और अमरता को प्राप्त करें । यही मानव जीवन का चरम और परम लक्ष्य होता है । आये हुए ऐसे सुअवसर को हाथ से जाने न दें, अन्यथा बाद में पछताना ही हाथ लगेगा।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! परिवार एवं पुत्र को बन्धनकारी कहा जा रहा है, इसका सबसे बड़ा आधार है कि जो जीव आत्म रूप में प्रारम्भ में तो भगवान् के अन्तर्गत ही अन्तर्निहित था, जो परम प्रभु यानी भगवान् की प्रेरणा से भगवान् से ही 'आत्म' शब्द रूप में अलग होकर 'आत्म' ही ज्योति से युक्त आत्म-ज्योति परमात्मा से निकली थी अथवा ब्रह्म-ज्योति जो परमब्रह्म से निकली थी अथवा दिव्य ईश्वरीय ज्योति जो परमेश्वर से निकली थी अथवा नूर जो अल्लाहतआला से प्रकट हुई थी, अथवा सोल या डिवाइन लाइट या लाइफ लाइट जो गॉड से निकली थी, उस समय यह जीव संस्कार बीज रूप में उसी ब्रह्म-ज्योति

में ही था जो प्रारब्ध कर्म के अनुसार सृष्टि क्रम में शरीर में प्रवेश किया। पुनः वह गर्भस्थ शिशु शरीर जिसमें ब्रह्म ज्योति से युक्त ब्रह्म-शक्ति ही शरीर में प्रवेश किया था परन्तु शरीर में प्रवेश पाते ही, वह ब्रह्म शक्ति माया के क्षेत्र में प्रवेश करने से दोष-गुण से युक्त होकर ब्रह्ममय जीव हो गया, तो ब्रह्ममय जीव से युक्त शरीर जब तक गर्भस्थ शिशु शरीर रहा, तब तक तो वह ब्रह्ममय ही था, परन्तु गर्भ से बाहर आते ही शारीरिकों (माता-पिता-संरक्षकादि) द्वारा वह ब्रह्म सम्पर्क कराने वाला ब्रह्म नाल कटवा दिया गया, जिससे शिशु शरीस्थ जीव का सम्पर्क जो ब्रह्म से था, वह भी कट गया, । अब यह मात्र शरीरमय जीव रह गया। पुनः बीतते दिन के क्रम से आगे- पीछे, अगल-बगल यानी चारों तरफ से ही शारीरिक 'हम' का अभ्यास उस पर होने लगा कि हम (शरीर) ही तुम्हारी माँ है, हम (शरीर) ही तुम्हारे पिता हैं, हम (शरीर) ही तुम्हारे भाई हैं आदि सब ही चारों तरफ से शरीर को ही हम मानने कहने वालों के लगातार अभ्यास से बालक का शरीर में रहते हुए भी जीव भाव रूप जो शरीर से पृथक् भाव था, वह भी शरीर भाव में लय हो गया तथा अब शिशु भी अपने शरीर को ही अपना मैं (जीव) मानने-जानने लगा। कुछ दिन-माह-वर्ष बीता नहीं कि शरीर का नामकरण कर दिया गया और उसी के माध्यम से हमें पुकारा यानी बुलाया जाने लगा और उस नाम से ही हमको बोलने को कहा गया तथा यह भी कहा गया कि यही नाम तुम्हारा नाम है। इस प्रकार शारीरिक नाम-रूप वाला 'मैं' भी शरीर ही हो गया और शरीर भाव में ही कहा-सुना-बोला आदि व्यवहरित होने लगा। पुनः बीतते समय और बढ़ते शरीर के क्रम में युवा हुआ। तब पुनः मुझे अकेलापन खटकने लगा क्योंकि जब मैं (जीव) ब्रह्म था तब भगवद् सम्पर्क के कारण भगवद्मय रहता हुआ सच्चिदानन्द, परमानन्द या सदानन्द में लीन रहता था। पुनः जब चिदानन्द ब्रह्मानन्द में मगन रहता था जब ब्रह्म से भी सम्पर्क कट गया। तब पुनः शरीर में रहते हुए भी जीव भाव में रहता हुआ आनन्द में ही लीन एवं मगन रहने लगा। पुनः जब जीव भाव भी शरीराभ्यास से समाप्त हो गया तो मात्र मैं शरीर भाव में रहता हुआ पीने-खाने में लीन और मगन रहने लगा, परन्तु जब युवा हुआ हूँ, तब तो अकेलापन महसूस होने लगा, वह भी प्यार और ममता तो समाप्त ही हो गया क्योंकि कि माता का का बराबर सम्पर्क और ममता-प्यार शिशु भाव तक तो मिलता रहा, परन्तु बालक रूप

बड़ा होने लगा तो विद्या युक्त करने के लिए ही पाठशाला पुनः विद्यालय भेजा जाने लगा।

चूँकि सर्व प्रथम तो 'मैं' परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म में ही था, वह भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म रूप सर्वसत्ता-शक्ति-सामर्थ्य से युक्त था। परन्तु यह विद्या शुष्क शक्ति-सत्ता रहित दिखलायी दिया, जबकि उस भगवत्तत्त्वं रूप में परमब्रह्म रूप सर्व शक्ति-सत्ता-सामर्थ्य युक्त होने के कारण वह 'विद्यातत्त्वम्' अपने आप में परमशान्ति और परम आनन्द के साथ ही साथ मुक्ति और अमरता से युक्त था। परन्तु यह विद्या (शिक्षा) तो बिल्कुल ही शुष्क, शान्ति रहित एवं आनन्द शून्य तो है ही, साथ ही साथ कर्म बन्धन (नौकरी) में फँसाने वाली तथा विनाशशील शरीर के उत्पत्ति व विकास वाली है।

इस प्रकार विद्या (शिक्षा) जो शान्ति और आनन्द से शून्य तथा बन्धन और विनाश से युक्त जान-देख कर पुनः अकेलापन की परेशानी जाने-अनजाने होने लगी। इस प्रकार इस शुष्क एवं शून्य तथा बन्धन वाली विद्या (शिक्षा) को सीखते हुए बीतते समय क्रम में शरीर युवा हुआ और अकेलापन महसूस होता-हुआ शुष्क एवं शून्य सा हो गया। तत्पश्चात् शारीरिक माता-पिता एक अन्यत्र से किसी युवती से जो कि काम-क्रोध-लोभ-मोह-माया-ममता-वासना आदि की साक्षात् मूर्ति ही थी, जिसके सम्पर्क से कष्ट और दुःख के अलावा यदि और कुछ मिलने वाला था तो वह मात्र भोग-व्यसन के रूप में स्त्रीपाश (बन्धन) और विनाश ही बाकी था, जो पुत्रोत्पन्न के माध्यम से भविष्य में मिलता है।

इस प्रकार बन्धुओं थोड़ा भी गौर करके जानने-समझने की कोशिश करें, तो असलियत का पता चल जायेगा कि परिवार से मैं उत्थान और मुक्ति को प्राप्त हुआ है अथवा पतन और बन्धन के माध्यम से विनाश को। विनाश तो अगले पैरा में देखना है भगवन्मय ब्रह्म से ब्रह्ममय जीव, पुनः ब्रह्ममय जीव से जीवमय शरीर; पुनः जीवमय शरीर से माता-पिता शरीरमय शरीर; पुनः माता-पिता शरीर मय शरीर से शुष्क एवं शून्य तथा बन्धन एवं विनाश से युक्त विद्या (शिक्षा) मय शरीर पुनः शिक्षामय शरीर से कामिनी और कांचनमयशरीर। सच्चिदानन्द रूप परमशान्ति और परम आनन्द से युक्त मुक्ति और अमरता के बोध से बिछुड़ कर चिदानन्द रूप शान्ति और आनन्द से तथा ब्रह्मानन्द रूप अनुभूति पर आया,

पुनः इससे बिछुड कर आनन्दानुभूति पर आया; पुनः इससे भी बिछुड़ कर शुष्क एवं शून्य रूप अकेलापन एवं उदासी शरीर पर आया और अब सबसे बिछुड़ कर सभी अवगुणों, सभी कष्टों एवं सभी दुःखों के खान रूप साक्षात् स्त्री पाश और काँचन में अटका हूँ। अब परिवार की बात आप बन्धु स्वयं सोच-समझ कर बतावें कि क्या यह गलत है ? कदापि नहीं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! अब तो समझ में आ ही गया होना चाहिए कि परिवार अथवा स्त्री एवं पुत्र उत्थान एवं मुक्ति में सहयोग देने वाले हैं, कि पतन एवं बन्धन और विनाश में सहयोग देने वाले ? अब यहाँ पर यह देखा जाय कि परिवार एवं पुत्र अमर बनाने वाले होते हैं कि मृत्यु एवं विनाश करने वाले।

बन्धुओं जब परिवार के सभी सदस्य मात्र शरीर ही हैं, शरीर के अलावा जीव-आत्मा तथा परमात्मा आदि कुछ भी नहीं, एकमात्र शरीर ही हैं । शरीर ही माता, शरीर ही पिता, शरीर ही भाई, शरीर ही बहन, शरीर ही पति, शरीर ही पत्नि, शरीर ही पुत्र, शरीर ही पुत्री, शरीर ही हित, शरीर ही मित्र, शरीर ही दुश्मन, शरीर ही शत्रु आदि सम्बन्धी-सम्पर्की मात्र केवल शरीर ही हैं और शरीर मात्र से ही मोह, ममता, आसक्ति एवं सारा सम्बन्ध भी है, तब शरीर जब मुर्दा (मृतक) हो जाता है, तब ये ही माता-पिता, पति-पत्नि, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, हित-मित्र, सगा-सम्बन्धी जन शरीर को जला कर अथवा गाड़ (मिट्टी दे) कर अथवा जल-प्रवाह करके बर्वाद या समाप्त क्यों कर देते हैं ? आज उस शरीर को अपने नाना प्रकार के सम्बन्धों के माध्यम से पुकार कर क्यों नहीं बुलाते हैं, क्यों नहीं ममता-प्यार देते हैं, क्यों नहीं साथ, सहयोग देते हैं, शरीर में क्या मर गया, क्या समाप्त हो गया, कि आज वही उसके प्रेमी, सगा-सम्बन्धी, हित-मित्र ही समाप्त करने पर लगे हैं ? ऐसा क्यों करते हैं ? ममता-प्यार कहाँ चला गया ? क्या आज वे माताजी नहीं रहीं ? क्या आज वे पिता जी नहीं रहे ? क्या आज वे भाई साहब नहीं रहे ? क्या आज वे पतिदेव नहीं रहे ? क्या आज प्राण-प्रिया पत्नि नहीं रही ? आज वे हित-मित्र नहीं रहे ? क्या आज वे शरीर नहीं रहे ? शरीर तो वही आज भी है फिर ये सभी सम्बन्ध कहाँ चले गये ? आज सभी का मोह-ममता-प्यार कहाँ चला गया ? क्या जब वह शरीर क्रियाशील थी, तभी तक सभी के सम्बन्ध थे,

आज नहीं ? क्या वह शरीर क्रियाशील थी तभी तक उसकी रक्षा-व्यवस्था थी, आज नहीं ? क्या वह शरीर क्रियाशील थी तभी तक सभी के अपनत्त्व और सम्बन्ध थे, आज नहीं ? ऐसा क्यों हो रहा है भाई ? यह तो गजब स्वार्थ की बात हुई कि जब तक वह क्रियाशील था, स्वार्थ सध रहा था तब तक सब अपने थे । सब रक्षक एवं सहयोगी थे और आज वही सभी अपने ही उसी अपने लगने वाले शरीर के भक्षक बने हुए हैं आप लोग आज ऐसा क्यों कर रहे हैं ?

यदि आप कह दें कि मर गया है, मुर्दा हो गया है तो कैसा मुर्दा हो गया है ? जो शरीर था वह तो आज भी है तो फिर कौन और क्या मर गया ? वह जब एकमात्र शरीर ही था, शरीर से पृथक् कुछ था ही नहीं, तो शरीर तो है ही, फिर मर क्या गया ? यदि आप कहते हैं कि जीव निकल गया, तो जीव तो आप जानते ही नहीं हैं कि जीव भी कुछ होता है, फिर आज आपके दिमाग में जीव शब्द कहाँ से आ गया ? जीव यदि निकल ही गया तो उससे तो आप लोगों को कोई मतलब था नहीं, मतलब तो था शरीर से और शरीर है ही । फिर शरीर को ही आप समाप्त या विनष्ट क्यों कर रहे हैं ? यानी इसीलिये आप सम्बन्ध किये थे कि एक दिन समाप्त कर दें या विनाश के मुंह में डाल देंगे । धिक्कार है ऐसे अपने लोगों को जो अपने ही हाथों अपना कहने वाले शरीर का विनाश कर-करा देते हैं । धिक्कार है ऐसे सम्बन्धों को कि जब तक क्रियाशील रहे स्वार्थ सध रहा था तब तक तो अपना है रक्षा करो, सहयोग करो और अब जब स्वार्थ सधना रूक गया तो समाप्त कर दो, विनाश के मुख में डाल दो । कागजों से इसका नाम भी खत्म करके अपना चढ़ा-चढ़वा दो कि इसका नाम-निशान न रह जाय। सब मिटा दो । धिक्कार-धिक्कार ! है ऐसे अपनत्त्व का ।

हम और हमार--तू और तोहार

परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् से छिटक कर 'आत्म' 'शब्द' रूप में अलग हुआ । पुनः 'आत्म' शब्द 'सः' शब्द में परिवर्तित हुआ और 'सः' शब्द 'अहम्' बनते या होते हुए तुरन्त सोऽहँ शब्द-रूप में कायम रहा । पुनः सोऽहँ में जब 'सः' (यानी ब्रह्म) से सम्बन्ध कट जाता है, तब मात्र 'अहम्' रह गया जो बाद में 'हम-हम' करते हुए जनमानस में उच्चरित होने लगा । अन्ततः वह 'हम' या 'मैं' नाना प्रकार के शरीरों में जुट-जुट कर शारीरिक नामों या रूपों में छिप जाता है । इस कारण यह यथार्थतः पता लगा पाना कि 'हम' अथवा 'मैं' कौन है, क्या है, कहाँ से आया है, कहाँ रहता है -- आदि बहुत दुरूह हो गया ।

'हम' अथवा 'मैं' क्या है ?

'हम' अथवा 'मैं' कौन है ?

'हम' अथवा 'मैं' कहाँ से आया है ?

'हम' अथवा 'मैं' कहाँ रहता है ?

'हम' अथवा 'मैं' किसका है ?

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! अब आइये हम लोग इन उपर्युक्त प्रश्नों पर बारी-बारी विचार-मन्थन, साधना और तत्त्वज्ञान पद्धति आदि से यथार्थतः इनके बारे में जानकारी करते हुए इनका पहचान करें। तत्पश्चात् जो यथार्थतः सत्य हो उससे जुट कर अथवा एक होकर अपने गन्तव्य लक्ष्य को प्राप्त करते हुए मुक्त जीवन जीयें ।

'हम' या 'मैं' क्या है ?

'हम' अहम् का ही अपभ्रंश है अर्थात् 'हम' अहम् का ही बिगड़ा हुआ उच्चारण युक्त 'शब्द' है जो सदा-सर्वदा चेतनता (Consciousness) से युक्त रहते हुये ही प्रयुक्त होता है । दूसरे शब्दों में, अहम्-अहम् कहते-कहते जो संस्कृत का एक शब्द है और जिसका अर्थ अथवा जिसका हिन्दी उच्चारण 'मैं' होता है, हिन्दी में 'हम-हम' अथवा 'मैं-मैं' कहा जाने लगा ।

'हम' अथवा 'मैं' न तो किसी शरीर को ही कहा जाता है और न 'हम' कोई वस्तु या पदार्थ ही होता है । तब प्रश्न यह उठता है कि जब 'हम' शरीर है ही नहीं, कोई वस्तु है ही नहीं, तो यह है क्या ? विचार करने और शोध करने पर आभास हुआ कि 'हम' शरीर और वस्तु तो बिल्कुल ही नहीं है । यह तो शब्द-सत्ता से युक्त अस्तित्त्व (Existence) है जो शरीरों से युक्त रहने पर प्रयुक्त होता रहता है । नासमझदारी के कारण अज्ञानी व्यक्ति शरीर को ही 'हम' अथवा 'मैं' समझ बैठता है जो भ्रम एवं भूल के अलावा और कुछ है ही नहीं ।

'हम' या 'मैं' शरीर नहीं; बल्कि शरीर हमारी है

'हम' न तो शरीर का कोई अंग है और न तो शरीर ही है । पुनः 'हम' न तो कोई वस्तु है और न कोई पदार्थ ही है । यह 'हम' अथवा 'मैं' तो एक 'अस्तित्त्व' (Existence) है जो शब्द-सत्ता से प्रयुक्त होता है । शरीर 'हम' का एक चलता-फिरता घर के रूप में अथवा संसार में कर्म करने तथा उसका भोग भोगने हेतु समस्त साधनों से युक्त सवारी के रूप में सृष्टि के अन्तर्गत श्रेष्ठतम् एवं सर्वोत्तम किस्म का एक विचित्र यन्त्र या मशीन है ।

'हम' अथवा 'मैं' इस शरीर रूप विचित्र यन्त्र का चालक नियुक्त है। विचित्र यन्त्र रूप यह शरीर आत्म-शक्ति अथवा ब्रह्म-शक्ति द्वारा चालित होता है जिसका संचालक या एकमात्र स्वामी परम आकाश रूप परमधाम में बैठा हुआ परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म-परमेश्वर या परमात्मा या सातवें आसमान में बैठा हुआ कादिर मुतलक अल्लाहतआला है ।

अतः आत्म-शक्ति अथवा ब्रह्म-शक्ति द्वारा चालित शरीर एक विचित्र यन्त्र है जिसका चालक नियुक्त है जीव और तीनों -- आत्म शक्ति या ब्रह्म शक्ति, जीव रूप चालक एवं शरीर रूप विचित्र यन्त्र तीनों का एकमात्र स्वामी या संचालक के रूप में परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म या परमेश्वर या परमात्मा या अल्लाहतआला ही सदा-सर्वदा शाश्वत् या अमरता एवं सर्वशक्ति-सत्ता सामर्थ्यवान् रूप में परमधाम या अमरलोक या सातवाँ आसमान में विराजमान रहते हैं । वे ही युग-युग में अपने विशिष्ट प्रतिनिधियों के करुण

पुकार पर इस धराधाम पर आते हैं और समस्त प्रकार (किस्म) के 'हम-हमार' 'तू-तोहार' अथवा 'मैं-मेरा' 'तू-तेरा' रूप झगड़ों का रहस्य यथार्थतः जनाते, दिखाते, समझाते और परिचय- पहचान-परख कराते हुए सत्य और न्याय के साथ 'ठीक' करते हैं अथवा न्याय संगत फैसला देते हैं ।

अन्ततः 'हम' अथवा 'मैं' शरीर और कोई वस्तु नहीं है बल्कि सृष्टि के श्रेष्ठतम् और सर्वोत्तम किस्म का एक विचित्र यन्त्र रूप शरीर का चालक रूप जीव है। यह परमात्मा द्वारा प्रदत्त आत्म-शक्ति द्वारा शरीर चलाता रहता है । यह 'हम' अथवा 'मैं' इस यन्त्र रूप शरीर का चालक मात्र होता है, स्वामी या मालिक नहीं ।

'हम' अथवा 'मैं' कौन ?

'हम' अथवा 'मैं' परम आकाश रूप परमधाम में सदा-सर्वदा शाश्वत् या अमरता अथवा सर्वशक्ति-सत्ता सामर्थ्यवान रूप में निवास करने वाले परमतत्त्वं रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म-परमेश्वर या परमात्मा या अल्लाहतआला रूप परमप्रभु का प्रतिविम्बवत् एक उन्हीं का प्रतिनिधि अथवा सामान्य कर्मचारी होता है । यह 'हम' अथवा 'मैं' शरीर तो कदापि नहीं है । हाँ, शरीर इसके साधन के रूप में एक चलता-फिरता सर्वोत्तम किस्म का यन्त्र होता है जिसके माध्यम से 'हम' अथवा 'मैं' (जीव) संसार में ही नहीं अपितु ब्रह्माण्ड अथवा सम्पूर्ण सृष्टि के अन्तर्गत जानकारियों को जान एवं कार्यों को बहुत ही सुलभ रूप में कर सकता है ।

'हम' या 'मैं' माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री तथा हित-नात आदि कदापि नहीं

'हम' अथवा 'मैं' जब शरीर है ही नहीं, तो इसके माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, मौसी-मौसा, बुआ-फूफा, हित-नात, सगा-सम्बन्धी आदि होने का सवाल ही नहीं बनता है । इतना ही नहीं, यथार्थतः देखा जाय तो इन लोगों से 'हम' अथवा 'मैं' का कोई सम्बन्ध कायम रखने की बात ही नहीं होती क्योंकि ये उपर्युक्त समस्त सम्बन्ध या रिस्ते-नाते शारीरिक मात्र होते हैं और ये जीव के लिये तो ऐसा 'मीठा जहर' होते हैं कि न तो इन्हें छोड़ते बनता है और न तो रहते

ही बनता है। परन्तु अन्ततः यदि इस 'मीठे जहर' रूप मीठे लगाव को समाप्त नहीं किया गया तो व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक आदि समस्याओं में से कुछ को भी किसी अन्य तौर-तरीके से सुलझाया अथवा हल नहीं निकाला जा सकता।

जब 'हम' अथवा 'मैं' ही शरीर नहीं है तो कोई शरीर 'हम' अथवा 'मैं' का माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि रिस्ते-नाते कैसे हो जायेंगे ? ये सभी सम्बन्धी जन पहले-पहल तो यह बतावें कि ये किसके माता-पिता हैं ? किसके भाई-बहन हैं ? किसके पुत्र-पुत्री आदि हैं ? 'हम' या 'मैं' के या 'हम' या 'मैं' से युक्त शरीर के ? तो पता चलेगा कि 'हम' अथवा 'मैं' को तो ये जानते ही नहीं हैं कि 'हम' या 'मैं' कौन है, कहाँ से आया है, कहाँ रहता है, इसका नाम क्या है, इसका क्या रूप है और अन्त में इसे जाना कहाँ है-- आदि बातों को जब ये जानते ही नहीं तो ये 'हम' या 'मैं' के माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि कैसे हो सकते हैं ? और जब इनको यह कहा जाये कि ये शरीर के माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि हैं तो अभी 'हम' या 'मैं' इस शरीर को छोड़ दें तो ये लोग जो सबसे बड़े अपना बने हैं, वही सबसे पहले शरीर को आग में, जल में अथवा मिट्टी में डाल कर समाप्त कर देंगे। तो इस प्रकार से ये लोग शरीर के भी अपने नहीं हुये। अर्थात् 'हम' और 'हमार' दोनों दो बातें हैं। 'मैं' और 'मेरा' दोनों दो बातें हैं। यदि इन्हें एक ही मान लिया जाये तो इससे बढ़कर जड़ता और मूढ़ता और क्या होगी ?

'हम' के पिता-पुत्र या माता-पुत्री आदि नहीं हो सकते

'हम' शरीर नहीं है, शरीर के अन्दर रहने वाला जीव मात्र है। समस्त शरीरों से तो एक ही आवाज 'हम' या 'मैं' निकलती है, चाहे वह शरीर स्त्री हो या पुरुष। प्रत्येक शरीर से जब यह पूछा जाता है कि आप कौन हैं, तो सर्व प्रथम 'हम' या 'मैं' का उच्चारण होता है कि 'हम' या 'मैं' अमुक व्यक्ति है। स्त्री भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहती है और पुरुष भी। पिता भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहते हैं और पुत्र भी। माता भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहती है और पुत्री भी। पति भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहते हैं और पत्नि भी। बूढ़े भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहते हैं

और बच्चा-लड़का भी । बुढ़िया भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहती है और बच्ची-लड़की भी । लड़का भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहता है और लड़की भी। भिखारी भी अपने को 'हम' या 'मैं' कहता है और राजा भी। समस्त शरीरों से ही यही आवाज जो एकमात्र 'एक ही' है, निकलती है । तो देखना यह है कि कौन पिता और कौन माता, कौन पुत्र और कौन पुत्री, कौन पति और कौन पत्नि है । अर्थात् कोई 'हम', 'हम' का माता; कोई 'हम' 'हम' का पिता, कोई 'हम' 'हम' का पुत्र, कोई 'हम', 'हम' का माता, कोई 'हम' 'हम' की पुत्री तथा कोई 'हम' या 'मैं' का ही सगा-सम्बन्धी आदि कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ! यहाँ पर जो बार-बार 'हम' या 'मैं' सबके साथ उच्चारित किया गया है, वह मात्र यह समझाने के लिए है कि यथार्थतः बात तो यह है कि 'हम' या 'मैं' दो है ही नहीं ।

'हम और हमार' -- 'तू और तोहार'

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! आइये अब हम लोग 'हम और हमार' तथा 'तू और तोहार' विषय पर विचार-मन्थन, ध्यान-साधना और तत्त्वज्ञान-पद्धति आदि के द्वारा जानकारी लिया-दिया और उसे यथार्थतः कार्य रूप में लागू किया जाय ताकि व्यक्ति और समाज आनन्द और शान्ति के साथ जीवन-बशर करते हुए चिदानन्दमय अनुभूति रहते हुए, अन्त में सच्चिदानन्दमय रूप परमशान्ति और परमानन्द में विलय कर जाया जाय । यही मानव जीवन का चरम और परम लक्ष्य है। यही परम शान्ति और परमानन्द है। यही शाश्वतता या अमरता की प्राप्ति है। यही कैवल्य अथवा पद-निर्वाण भी है और यही मुक्ति और मोक्ष भी है ।

"शब्द-ब्रह्म" से उत्पन्न आत्म-ज्योति रूप शिव-शक्ति रूप शब्द-सत्ता ही शरीरों में प्रवेश करके 'अहम्' 'शब्द' में परिवर्तित होकर 'हम'-'हम' अथवा 'मैं'-'मैं' और 'तू'-'तू' करते हुए, अज्ञानी रूप में अपने को शरीमय मानते और जढ़ता एवं मूढ़ता के कारण शरीरमय ही रहते हुए, नाना प्रकार के शरीरों के नाना प्रकार के नामों और रूपों में अपने 'अहम्' या 'हम' या 'मैं' को मिलाते हुए, शारीरिक नामों और रूपों को ही अपना नाम और रूप कहने तथा उसी के अनुसार व्यवहार करने लगते हैं जिसके कारण एक 'अहम्' दो शब्दों 'अहम्' और 'त्वम्' अर्थात् हम और तू के माध्यम से उच्चारित होने लगा । जिसमें प्रत्येक

शरीर से अपने परिचय में तो 'अहम्' या 'हम' या 'मैं' बताया जाता है परन्तु सामने रहने वाले जिससे बात की जाती है उसको या उसके लिए 'तुम' या 'तू' शब्द उच्चारित करते हैं । दूसरे शब्दों में -- दूसरे के अपेक्षा अपने परिचय के विषय में किसी को भी अच्छी जानकारी होती है। स्त्री-पुरुष, लड़का-लड़की, बूढ़ा-बच्चा आदि जो भी हैं, पूछे जाने पर प्रत्येक शरीरों से ही अपने परिचय के रूप में 'हम' या 'मैं' ही आवाज पहले-पहल निकलती है। 'तुम' या 'तू' आवाज तो हर व्यक्ति ही अपने समक्ष उपस्थित व्यक्ति के लिए निकालता है । 'तुम' या 'तू' कहलाने वाला व्यक्ति भी अपना परिचय बतलाने में अपने को 'अहम्' या 'हम' या 'मैं' ही बताता है । परन्तु कोई 'हम' या 'मैं' वाला व्यक्ति कभी भी अपने को 'तुम' या 'तू' नहीं कहता अर्थात् प्रत्येक 'तुम' या 'तू' वाला व्यक्ति कभी भी अपने को 'तुम' या 'तू' नहीं कहता है । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक 'तुम' या 'तू' यथार्थतः 'हम' या 'मैं' ही होता है अर्थात् कोई 'हम' या 'मैं' अपने द्वारा अपने को 'तुम' या 'तू' नहीं कह सकता । 'हम' या 'मैं' तथा 'तुम' या 'तू' न तो कोई अंग होता है और न शरीर ही। न कोई वस्तु होता है और न कोई स्थान ही। वह (हम और तुम) तो मात्र शब्द-सत्ता रूप में एक 'अस्तित्त्व' है । अस्तित्त्व का सीधा सम्बन्ध आत्म-ज्योति रूप शब्द-शक्ति से होता है । दूसरे शब्दों में 'हम और तुम' का अस्तित्त्व आत्म-ज्योति रूप शब्द-शक्ति से ही सीधा सम्बन्धित एक उसी का अंशवत् शब्द-सत्ता ही है । 'हम और तुम' एक ही 'हम' वाले व्यवहार हेतु दो रूप में (डबल रोल में) होता है। यथार्थतः तो 'हम' और 'तुम' दो होता ही नहीं, मात्र 'एक' ही है ।

'हम' अस्तित्त्व से जिसका सम्बन्ध या लगाव 'हम' के लिए होता है, वह व्यक्ति, वस्तु और स्थान 'हमार' कहलाता है और 'तुम' लाभ के लिए जो होता है, वह तोहार कहलाता है । परन्तु यह 'हम और हमार' तथा 'तू और तोहार' मात्र एक भ्रम ही है क्योंकि जब 'तू' भी 'हम' ही है और 'हम' को ही 'तुम' भी कहना है तो प्रत्येक 'तुम' 'हम' और प्रत्येक 'हम' 'तुम' ही है । तब भेद किस बात का ? अर्थात् कोई भेद नहीं ! तो फिर हमार और तोहार ही कहाँ रहा । कोई हिस्सा बँटवारा नहीं ! जब 'हमार' और 'तोहार', 'हम' और 'तुम' से सम्बन्धित होने मात्र से ही होना है और 'हम' और 'तुम' दो है ही नहीं, एक ही 'हम' का मात्र

व्यवहार-व्यवस्था हेतु दो रूप है अन्यथा दोनों एक ही है, तो 'हमार और तोहार' भी दोनों एक ही 'हम' का हुआ जो समस्त शरीरों के भीतर कायम है। अन्ततः हमें यही कहना ही पड़ेगा कि समस्त शरीर ही एकमात्र 'हम' या 'मैं' द्वारा ही चालित होता है अर्थात् सृष्टि में जितने भी जीव या प्राणी हैं, सब के अन्दर से ही एक मात्र 'हम' या 'मैं' का ही उच्चारण होता है। 'तुम' तो मात्र व्यवहार-व्यवस्था हेतु ही 'हम' का ही दूसरा रूप (या डबल रोल) है।

चूँकि दो शरीरों को भाव और बोध के अलावा अन्य किसी भी तरीके से 'एक' में मिलाया अथवा 'एक' बनाया नहीं जा सकता है अर्थात् विचार, भाव और बोधत्त्व 'एकरूपता' के सिवाय शारीरिक विलय अथवा 'एकत्त्व' रूप एकरूपता का होना सम्भव ही नहीं होता है परन्तु 'हमार और तोहार' 'एकत्त्व' हुए बिना शान्ति और आनन्द की प्राप्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है, पाना या मिलना तो दूर है क्योंकि पृथकता और परिवर्तनशीलता शोक और अशान्ति स्वभाव वाला होता ही है। पृथकता और परिवर्तनशीलता की ताशीर (स्वभाव) कष्ट या शोक और अशान्ति प्रधान तथा स्थिरता और एक रूपता (अपरिवर्तनशीलता) आनन्द और शान्ति स्वभाव (ताशीर) वाला होता है।

'परमात्मा' के प्रति पूर्ण समर्पण-भाव ही अंशवत् 'आत्मा' के प्रति प्रत्याहार

सद्भावी बन्धुओं ! प्रत्याहार अष्टांग योग का पांचवाँ अंग है और जीव का आत्मा से मिलन ही योग है । इससे यह स्पष्ट होता है कि आत्मा से मिलन में जीव को पड़ने वाले बाधाओं या फँसानों को दूर करने के लिये विषयों से इन्द्रियों का निग्रह ही प्रत्याहार है । अर्थात् इन्द्रियों को अपने विषयाभिमुखी वृत्तियों से खींचकर और रोककर धारणा में लगाना तथा आत्मा का ध्यान करना या ध्यान में आत्म-ज्योति का साक्षात्कार करना ही योग-साधना है । यह प्रत्याहार योगी-यति, ऋषि-महर्षि तथा योग-साधना वाले आध्यात्मिक सन्त-महात्मा लोग आजीवन इन्द्रियों को अपने विषयाभिमुखी वृत्तियों से मोड़कर आत्म-साक्षात्कार की साधना में लगाते रहते हैं, फिर भी बहुत कम ही सफल भी हो पाते हैं । जबकि ज्ञान में कोई साधना नहीं करनी पड़ती है और न इन्द्रियों को ही अपने वृत्तियों से मोड़ना पड़ता है। बल्कि इन्द्रियों को परमात्मा के सेवार्थ और ही मजबूती तथा प्रभावी रूप में परमात्मा के आनन्द और प्रसन्नता हेतु परमात्मा के ही सेवा में श्रद्धापूर्वक लगाना तथा इसमें अपने को सौभाग्यशाली समझना कि हमारी इन्द्रियाँ एवं शरीर परमात्मा की सेवार्थ उपयोग में आ रही है । परमार्थ या परमात्मा के लिये प्रयोग में पूर्ण समर्पण भाव में आने वाली इन्द्रियों तथा उनके विषय में प्रयोग होने पर किसी भी प्रकार का दोष की कल्पना भी नहीं किया जा सकता है । बल्कि यह तो परम सौभाग्य की बात है कि परमात्मा के उपयोग में हमारी इन्द्रियाँ और शरीर आये या लगे, इससे बढ़कर और सौभाग्य हो ही क्या सकता है अर्थात् कुछ नहीं । अतः प्रत्याहार में इन्द्रियों को वाह्य विषयों से खींचकर आत्मा के दरश-परश हेतु अन्तःवृत्ति में लगाया जाता है । जबकि पूर्ण समर्पण में परमात्मा में ही अपनी इन्द्रियों तथा शरीर को परिवार और संसार से खींचकर या रोककर एकमात्र परमात्मा की भक्ति-सेवा में लगाना ही पूर्ण जिज्ञासु एवं श्रद्धालु भाव से पूर्ण

समर्पण रूप में परमात्मा के आश्रय और शरण में रहना ही जीवन का चरम और परम लक्ष्य के साथ ही चरम और परम सौभाग्य समझना चाहिये । उदाहरणार्थ गोपियाँ परमात्मा के प्यार हेतु तथा सेवार्थ अपने परिवार तथा संसार को छोड़कर भी इन्द्रियों तथा शरीर को पूर्ण समर्पण भाव श्री कृष्ण जी में लगा दीं । तो वर्तमान में तो बदनाम अवश्य हुईं परन्तु आज वही मंगल गान में भी पाई जाती हैं और कृष्ण के पूर्व ही इन लोगों का नाम भी लिया जाता है कि राधे श्याम, गोपी कृष्ण आदि कह-कह कर लोग भक्ति-गान गाते हुए आनन्दित होते हैं ।

घर-परिवार में रहने वाला चाहे जो कोई भी हो और अपने को जो कुछ भी समझता हो, वह भोगी-व्यसनी ही है ।

गृहस्थ में रहने वाला पति-पत्नि आपस में एक दूसरे के लिए सर्वनाश की जडीबुटी है ।

--सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस

उपनयन संस्कार

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! उपनयन संस्कार संस्कृति प्रधान वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत बालक को 'उप' यानी समीप 'नयन' यानी दृष्टि या आँख या चक्षु 'संस्कार' बताये या खोलने वाली संस्कृति प्रधान पद्धति अर्थात् संस्कृति प्रधान ऐसी पद्धति जिसमें बालक को दो नयनों के मध्य ऊपरी हिस्से यानी भ्रूमध्य स्थित तीसरी दृष्टि खोल कर जो प्रसूति गृह में प्रायः बन्द करा दिया गया था, ध्यान की जानकारी गुरु जी द्वारा कराकर ब्रह्म साक्षात्कार कराया जाता है । तत्पश्चात् उस बालक को ब्रह्ममय आचरण का उपदेश देकर ब्रह्मचारी का वेष दिया जाता है । पुनः साँसारिकता से विरक्ति का उपदेश देकर साँसारिक सुख के सामग्रियों के त्याग का पाठ पढ़ाया जाता है । पुनः सर्व प्रथम माता जी तथा सगा-सम्बन्धियों हित-नात, घर-परिवार तथा गाँव क्षेत्र के अपने नजदीकी या समीपी या मेल-मिलापी लोगों से भीक्षाटन करवाया जाता था कि अब मेरा सम्बन्ध अपनत्त्व वाला समाप्त होता है । अब आप लोग भी वैसे ही हैं, जैसे देश-काल के अन्य लोग। इसीलिये आप लोगों से भी भीक्षाटन करके अर्थात् भीख माँगकर दिखला रहा हूँ कि अब मैं वत्कल व दण्डधारी ब्रह्मचारी हो गया हूँ । मेरे लिये अब गुरुदेव ही सब कुछ हैं । मैं उनके लिये भीक्षाटन करके लाऊँगा । गुरुदेव की ही भक्ति-सेवा करूँगा तथा निष्काम भाव से गुरु भक्ति-सेवा करते हुये वेद-शास्त्र तथा वेद-शास्त्रों के रहस्य रूप ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) का जनमानस में प्रचार-प्रसार करते हुये गुरु आज्ञानुसार समाज कल्याण करूँगा । गुरुदेव और ब्रह्म के सिवाय हमारा इस संसार में न कोई पहले था और न अब है और न आगे रहेगा । अतः अपने माता-पिता, सगा-सम्बन्धी, हित-नात, भाई-परिवार, गाँव-घर से भीक्षाटन करके यह दिखला दे रहा हूँ कि अब 'मैं' आप लोगों का नहीं रहा और न आप लोग अब मेरे रहे । अब मैं जो कुछ भी हूँ, गुरु सेवक एक ब्रह्मचारी 'बटोही' हूँ जो आप देश वासियों से गुरु आज्ञा से गुरु सेवा हेतु भीक्षाटन करने आया हूँ ।

सद्भावी बन्धुओं ! उप नयन संस्कार के अन्तर्गत ब्रह्मचारी वेश में 'सीखा' (चोटी -- सिर पर ऊपरी हिस्से का केश) रखवाया जाता है कि भीक्षाटन के समय सभी लोग देख लें कि मैं सिख गया हूँ अर्थात् जिस ब्रह्म से विछुण गया था, जिस ब्रह्म की यादगारी भी समाप्त हो गयी थी यानी जिसे भूल गया था, अब उसे 'मैं' सिख गया। उससे (ब्रह्म से) विछुण जाने के कारण मैं जो 'शूद्र' बन गया था, जो शूद्रवत व्यवहार मैं लोगों तथा लोग मेरे साथ करते थे, तो अब मैं उसे सिख गया। अब मैं शुद्र नहीं रहा। अब मैं ब्रह्ममय आचरण (व्यवहार) वाला ब्रह्मचारी हो गया हूँ। मैं जो गर्भस्थ शिशु तक ब्रह्ममय था, मेरी रक्षा-व्यवस्था ब्रह्म द्वारा ही ब्रह्मनाल (नार-पुरईन) के माध्यम से होती रहती थी परन्तु जैसे ही 'मैं' गर्भ से बाहर हुआ कि स्वार्थी माता-पिता तथा परिवार के संरक्षक द्वारा मेरा ब्रह्मनाल (नार-पुरईन) जिसके द्वारा मैं ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता से सम्बन्धित रहते हुये ब्रह्ममय था, उस ब्रह्मनाल (नार-पुरईन) को 'चमईन' यानी 'प्रसूति सेविका' बुलवाकर काट-कटवाकर मुझे ब्रह्ममय से शरीरमय बनाने का सिलसिला (अभ्यास) शुरु हो गया। जैसे ही मेरा ब्रह्मनाल काटा कटवाया गया, मेरा ब्रह्म-शक्ति रूपी पिता-माता से सम्बन्ध कट गया और 'मैं' अति परेशानी से युक्त होते हुये 'अवाक्' हो गया कि अरे 'मैं' कहाँ आ गया ? 'मैं' कहाँ आ गया ? तो मेरे साथ इन नकली शारीरिक माता-पिता बनने वाले मेरे समक्ष नकली साधन प्रस्तुत किये क्योंकि असल ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता से तो 'मैं' 'साधना' के माध्यम से सम्बन्धित था तो यहाँ पर नकली शारीरिक माता-पिता (भावी) के पास 'साधना' की जानकारी तो थी नहीं, और साधना की जानकारी देते-दिलवाते तो 'मैं' इनका रह नहीं पाता। तब तो 'मैं' अपने असल ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता से युक्त होकर उन्हीं का ही रहता। इन नकली वाले को कौन और क्यों पूछता ? इसका क्यों बनता ? मेरे ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता के पास क्या नहीं था ? किस बात की कमी थी ? अर्थात् कुछ नहीं ! इसीलिये नकली शारीरिक माता-पिता (भावी) द्वारा स्वार्थ वश अपना बनाने हेतु सर्वप्रथम मेरा ब्रह्मनाल कटवा कर असल ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता से सम्बन्ध कट जाने पर 'मैं' निःसहारा हो गया। परेशान हो गया। आवाक् हो गया कि मैं कहाँ आ गया तथा मेरे ब्रह्म-शक्ति रूप पिता जी और माता जी कहाँ चले गये ? क्यों नहीं दिखलाई दे रहे हैं ? उनकी दिव्य रोशनी (दिव्य ज्योति) वाला

रूप कहाँ चला गया ? उनसे मिलने वाला 'अमृत' जो 'मैं' पान करता था, जिसके सहारे 'मैं' गर्भ में भी जीवित रहा और मुझे अन्न-जल की कोई आवश्यकता नहीं महसूस होती थी, वह भी मिलना बन्द हो गया । मेरे असल ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता की हरदम ही पूजा-आरती होती रहती थी जिसमें नाना तरह के बाँसुरी, मृदंग, नगाड़ा, झालि (जोड़ी) आदि-आदि सभी बाजे बजते रहते थे । जिसे मैं बराबर सुनता हुआ आनन्द विभोर रहता था । वह भी अब सुनाई देना बन्द हो गया । पुनः मेरी सोऽहँ-हँ्सो वाली तैलधारा वत् अखण्ड वृत्ति जिसके द्वारा मेरे ब्रह्म-शक्ति रूप दिव्य ज्योति से अवधि सम्बन्ध ओर दरश-परश यानी मेल-मिलाप होता था। अब मेरी वह अखण्ड वृत्ति भी विस्मृत हो गयी । वह सोऽहँ-हँ्सो वाली अखण्ड वृत्ति खण्डित हो गयी जिससे कि मेरा ब्रह्म-शक्ति रूप असल पिता-माता से सम्बन्ध ही कट गया । मैं उनसे विछुड़ गया। अब मुझे काफी परेशानी हो रही है । मेरा अब बचना ही मुश्किल है । आखिर ऐसा क्यों हुआ ? यह सोचकर मैं परेशान हो गया और मैं कहाँ-कहाँ-कहाँ करके रोने लगा । अब मुझे लगा कि मैं अपने ब्रह्म-शक्ति रूप असल पिता-माता से विछुड़ कर निःसहारा होकर भटक कर कहीं गिर पड़ा हूँ और मैं अनाथ हो गया हूँ । किसी सहारा की आशा में मेरा अब अन्तिम दम घूँट रहा था । तब मेरी शारीरिक आँख काफी अफनाहट, उकबुकाहट (छटपटाहट) के कारण खुल गयी । जैसे कि स्वप्न में जब कभी विचित्र संकट की घड़ी में, कष्ट की छटपटाहट में एक बा एक (अचानक) आँख खुल जाती है, वैसी ही हमारी शारीरिक आँख जो बन्द थी, खुल गयी । जब शारीरिक आँख बन्द थी तो हमारी तीसरी आँख खुली हुई थी । उसके माध्यम से दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति (दिव्य ज्योति) का सदा ही साक्षात्कार होता रहता था परन्तु सम्बन्ध कट जाने पर वह दिव्य ज्योति दिखलायी देनी तो बन्द हो गयी थी । इस कारण मेरे समक्ष घोर अंधेरा छा गया था । मेरी दृष्टि जो ऊर्ध्व होकर दिव्य दर्शन में लगी रहती थी, वह घोर अंधेरा के कारण उसके खोज में काफी परेशान हो गया । फिर ऊपर उसे कहीं भी वह दिव्य ज्योति दिखलायी नहीं दी । मुझे क्या मालुम कि मेरा ब्रह्मनाल या नार-पुरईन ही काट-कटवा कर मेरा दिव्य ज्योति रूप पिता-माता से सम्बन्ध काट-कटवाकर मुझे उनसे विछुड़ा दिया गया है । तब मैं इस दिव्य ज्योति की तलाश में जब वह ऊपर नहीं मिल सका तो

मेरी दृष्टि ऊर्ध्वमुखी से अधोमुखी हो गयी । घोर अंधेरा चारो तरफ रहने के कारण मेरी अफनाहट इतनी बढ़ गयी कि मेरे शारीरिक आँख का बन्द पपनी (दोनों पलके) अचानक-एक बा एक खुल गयी और मुझे एक ज्योति (दीप-ज्योति) दिखलायी दी जो मुझे घोर अंधेरा की छटपटाहट के कारण विक्षिप्तता वश मुझे यही समझ में आया कि मुझे वही दिव्य ज्योति मिल गयी तथा इस दीप-ज्योति को मैं एक टक लगाकर देखता और विक्षिप्तता के कारण लुभाता रहा । कुछ ही देर बाद देखा कि मेरे जीभ (जिह्वा) को जो ऊर्ध्वमुखी था जिससे कि 'मैं' अमृत-पान करता था, उसे खींच कर अधोमुखी करते हुये मुख में ला दिया गया । इसके कारण वह सूखने लगी तो पुनः परेशानी बढ़ी और कण्ठ सूखने लगा जिससे कि मेरी विक्षिप्तता और ही बढ़ने लगी । मैं अपने को बिल्कुल ही निःसहारा यानी असहाय महशूस करने लगा । तब तक मेरे जीभ पर 'अमृत' ही समझकर उसका पान 'अमृत पान' जैसा (मधुपान) करने लगा । पुनः थोड़ी देर बाद आवाज सुनायी देने लगा तो मैं दिव्य ध्वनि जो मेरे दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के यहाँ बराबर ही बजता रहता था जिसे मैं सुनते हुए आनन्द विभोर रहता था जिससे कि अब दिव्य सम्बन्ध कट (कटवा दिये) जाने के कारण विछुड़ गया था, तो उसकी भी परेशानी और उकबुकाहट यानी अफनाहट तो थी ही, उसी अफनाहट के कारण वह आवाज (फूल के थाली बजने वाली) मुझे वैसी ही लगी और मैं सुनकर पुनः मुग्ध या विभोर होने लगे कि मुझे वही दिव्य ध्वनि ही जिससे विछुड़ गये थे, पुनः मुझे प्राप्त हो गयी और वही सुनायी दे रही है । पुनः कुछ देर बाद मुझे अपनी सोऽहँ-हँ्सो वाली तैलधारावत् अखण्ड वृत्ति से खण्डित होने वाली बात कचोटने लगी यानी उसकी परेशानी होने लगी कि आखिर वह नाम (सोऽहँ-हँ्सो) ही क्यों विस्मृत हो गया ? मुझे क्या पता कि मेरा ब्रह्मनाल (नार-पुरईन) ही जिससे कि मैं अखण्ड वृत्ति में ही मस्त रहता था और मुझे कुछ आवश्यकता है अथवा मुझे कुछ चाहिये, ऐसी बातों को दिमाग में आने या सोचने के लिए फुरसत (मौका) ही नहीं था । मैं तो उसी अखण्ड वृत्ति के कारण दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के मेल-मिलाप में मस्त था । मुझे अपने शरीर के रक्षा-व्यवस्था एवं विकास की भी सुध (यादगारी) नहीं थी । रक्षा-व्यवस्था का सारा भार उसी ब्रह्म-शक्ति रूप दिव्य पिता-माता पर था । नहीं तो उनके सिवाय कौन था जो गर्भ में मेरी रक्षा-व्यवस्था

करता अर्थात् और किसी के मान का नहीं था । तो उस अखण्ड वृत्ति के खण्डित हो जाने से मेरी परेशानी तथा सोच-फिकर (अखण्ड वृत्ति के खण्डित होने की) होने लगी । अब मैं पुनः उस अखण्ड वृत्ति से युक्त कैसे होऊँ ? मेरे अन्दर यह खोज तथा नहीं मिलने या होने के कारण परेशानी होने लगी और पुनः मैं उसी खोज और परेशानी के कारण विक्षिप्त सा होने लगा और मेरी विक्षिप्तता बढ़ने लगी । तब कुछ समय पश्चात् सोऽहँ-हँ्सो के जैसे ही मुग्ध करने वाली आवाज (सोहर) में ही मुग्ध हो गया । इस प्रकार मैं ब्रह्म-शक्ति रूप दिव्य पिता-माता से विछुड़ (बिछुड़ा दिये) जाने के कारण दिव्य उपलब्धियों जो स्थिर-अविनाशी मूलक थी, से बिछुड़ कर विनाश शील इस क्षणिक लाभों में लुभा कर ऊर्ध्वमुखी रूप ऊर्ध्व वृत्ति से अधोमुखी रूप अधःपतन को प्राप्त होता हुआ ब्रह्म-शक्ति रूप अविनाशी दिव्य पिता-माता के स्थान पर विनाशशील शारीरिक माता-पिता रूप शरीरों में फँसता हुआ अपने को भी शरीर ही मानने जानने लगा । और मात्र शरीरों माता (शरीर), पिता (शरीर), भाई (शरीर), बहन (शरीर), चाचा (शरीर), चाची (शरीर), दादा (शरीर), दादी (शरीर), मामा (शरीर), मामी (शरीर), फूआ (शरीर), फूफा (शरीर), मौसी (शरीर), मौसा (शरीर), अन्य हित-नात (शरीर), दोस्त-मित्र (शरीर), भाई-पटीदार (शरीर), गाँव-घर के लोग (शरीर) -- जिधर जाओ उधर ही शरीर, जिससे मिलो वह भी शरीर, जिससे जो भी व्यवहार करो, वह सब के सब ही शरीर और शारीरिक ही चारो तरफ दिखलायी देने लगा और मैं भी अपने को शरीर मय मानता हुआ उन्हीं शरीरों के मध्य विचरने लगा, खाने लगा, पहनने, रहने-सहने लगा । अर्थात् मैं जो गर्भ तक, गर्भ से बाहर आते समय तक ब्रह्म-शक्ति रूप अविनाशी दिव्य पिता-माता के सन्तान व उसी के सम्बन्ध में रहते हुए ब्रह्मनाल के सहारे में भी जीवात्मा रूप से अविनाशी रूप में ब्रह्ममय ही होकर रहता था परन्तु मेरा सहारा रूप ब्रह्मनाल काट-कटवा कर मुझे विनाशशील शरीरमय पुनः शरीर ही बना दिया गया तथा दिव्य उपलब्धियों के स्थान पर क्षणिक लुभावनी विनाशशील सामग्रियों में फँसा-फँसा कर लुभा दिया गया और ब्रह्मनाल कट (कटवा दिये) जाने के कारण निःसहाय होता हुआ फँसता गया। मुझे ब्रह्ममय से शरीरमय पुनः शरीरमय से शरीर होता हुआ अधःपतन के क्रम में पतन दर पतन के कारण शरीरों में भी मैं शूद्रवत् अति नीच शरीर वाली स्थिति

तक पहुँचा दिया गया । मैं अछूत, मेरे से छू जाने वाले अछूत, मेरे पैदाइश वाली कोठरी अशुद्ध होता हुआ मैं अधःपतित ही हो गया था यानी मुझे पहुँचा दिया गया था । धन्य है गुरुदेव जो मुझे इस अधःपतन से उबारकर पुनः ब्रह्ममय रूप ऊर्ध्ववृत्ति रूप उत्थान को पहुँचाया । अब मैं भीक्षाटन करके गुरु सेवा ही करूँगा तथा हमारे ही जैसे जो अधःपतन को प्राप्त होते हुये अधःपतित बना दिये गये हैं उन्हें गुरु कृपा से पुनः समझा-बुझा कर उत्थान रूप ब्रह्ममय बनाने में गुरुदेव का भरपूर सेवा करूँगा । मुझे केवल गुरु कृपा ही चाहिये और कुछ नहीं ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! आइए पुनः उप नयन संस्कार वाले विषय-वस्तु पर चला जाय । भीक्षाटन करते हुये ब्रह्मचारी को जनेऊ दिया जाता है । जनेऊ देने का अर्थ यह था कि अब मैं जान गया हूँ -- जिससे बिछुड़ा (बिछुड़ाया गया) था उस ब्रह्म-शक्ति रूप अविनाशी दिव्य पिता-माता को जान गया हूँ और पुनः ऊर्ध्वमुखी दृष्टि एवं वृत्ति से इस अपने असल अविनाशी दिव्य पिता-माता के दिव्य ज्योति रूप दिव्य रूप का भी ध्यान रूप दिव्य दृष्टि के द्वारा साक्षात्कार कर लिया । पुनः मैं असल 'अमृत पान' की बात भी समझ गया जिससे अमृत पान भी कर लिया । पुनः मैं अपने अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के यहाँ हो रहे दिव्य ध्वनियों को भी असल रूप में सुन लिया तथा पुनः मैं गुरुदेव की कृपा से मेरी अखण्ड वृत्ति भी जो खण्डित हो चुकी थी, पुनः अपने अखण्ड रूप में हो गयी । इस प्रकार गुरु कृपा से अपने असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति का जिससे बिछुड़ा दिया गया था साक्षात्कार कर भी लिया तथा गुरु कृपा से जब चाहूँ तब कर सकता हूँ । गुरु कृपा से अमृत पान भी जिससे बिछुड़ा दिया गया था, कर रहा हूँ तथा गुरु कृपा से जब चाहूँ कर भी सकता हूँ । गुरु कृपा से ही मैं दिव्य ध्वनियों को जो मेरे अविनाशी दिव्य पिता-माता के यहाँ सदा ही होता रहता है, सुन लिया हूँ । अब जब चाहूँ गुरु कृपा से सुन भी सकता हूँ । गुरु कृपा से उस अखण्ड वृत्ति को भी प्राप्त हो गया हूँ जिससे ब्रह्मनाल कटवा कर बिछुड़ा दिया गया था तथा गुरु कृपा से ही यह मेरी अखण्ड वृत्ति बनी भी रहेगी । गुरु कृपा से ही मैं पुनः शुद्रवत् से शरीर से ऊपर उठकर आज ब्रह्ममय हो पाया हूँ तथा गुरु कृपा रही तो ब्रह्ममय से अब ब्रह्म में विलीन होकर ब्रह्म ही बनूँगा । अब फिर कभी उन शरीर प्रधान नकली विनाशशील, मायावी, घोर शत्रु

जिसने मेरा ब्रह्मनाल कटवा कर मुझे अपने विनाशशील शरीर रूपों में फँसाया था अब उसके पास, उसके यहाँ जाना तो दूर रहा । उन मायावी शत्रुओं का नाम तक नहीं याद करूँगा क्योंकि वे महान पातकी है जो अविनाशी ब्रह्म-शक्ति रूप दिव्य पिता-माता से सम्बन्ध बिछुड़ा कर अपना तुच्छ स्वार्थ साधना चाहते हैं सब । अब हमारे गुरुदेव ही संसार में पिता-माता, स्वामी, गुरु, पति, संरक्षक आदि सब कुछ रहेंगे । ये ही मेरे इष्ट-अभीष्ट भी रहेंगे क्योंकि मुझे विनाश के मुख से निकाल कर अविनाशी ब्रह्म-शक्ति रूप पिता-माता से पुनः सम्बन्ध जोड़ कर मुझे अधः पतन से उबार कर मेरा अपार कल्याण किये हैं । ऐसे गुरुदेव को मेरा बार-बार हजार बार, बार-बार कोटि बार पुनः बार-बार अनन्त बार साष्टांग प्रणाम है तथा गुरुदेव से एक यही प्रार्थना है कि मेरा यह ज्ञान सदा कायम रहे तथा आप के चरण कमल की सेवा-भक्ति मुझसे कभी भी न छूटे । सद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! जनेऊ 'नरमा' के रूई के सूत का बनता है । तो यहाँ यह भी बात है कि बालक ब्रह्म-शक्ति को जानने के कारण नरम, मुलायम तथा हल्का (अहंकार शून्य) हो गया है । यही कारण है कि नरमा के रूई का ही प्रयोग जनेऊ के लिये होता है क्योंकि अन्य सभी रूइयों में नरमा की रूई सबसे नरम, मुलायम, हल्का और पवित्र होती है । जनेऊ तो असल अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति के जानने वाले होने के प्रतीक स्वरूप ही धारण होता है । पुनः जनेऊ में तीन सूत होता है । तो पुनः प्रश्न उठ सकता है कि तीन सूत ही क्यों होता है ? तो यहाँ पर यही जवाब होगा कि तीन ही गुण (सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण) होता है । इसीलिये उन्हीं तीनों गुणों के प्रतीक रूप तीन ही सूत होता है कि यह ब्रह्मचारी इन तीनों गुणों से ऊपर उठ गया है यानी तीनों गुणों से परे हो गया । पुनः तीनों सूत अपने में प्रत्येक में तीन-तीन सूत होता है । इसके लिये भी आप प्रश्न उठा सकते हैं कि ऐसा क्यों ? तो इसके समाधान हेतु यही उत्तर है कि तीनों गुण अपने में प्रत्येक में ही तीन-तीन अवस्थाएँ (जाग्रत-स्वप्न-सुसुप्ति) होती है । उसी का प्रतीक यहाँ पर तीनों सूत अपने में प्रत्येक तीन-तीन सूत का होता है । इससे यह संकेत किया जाता है कि ब्रह्म-शक्ति से युक्त ब्रह्मचारी इन तीन अवस्थाओं से भी परे हो जाता है यानी इन तीन अवस्थाओं का भी उस पर प्रभाव नहीं समझा है । तीनों में ही ब्रह्मचारी सम रूप ही रहता है । जनेऊ में जो सबसे

महत्त्वपूर्ण बात होता है, वह यह होता है कि उसमें ब्रह्मगाँठ होता है जिसका अर्थ जीव का ब्रह्म-शक्ति से --जो ब्रह्मनाल (नार-पुरईन) कटवा कर सम्बन्ध काट यानी विच्छेद कर दिया गया था और माया में फँसा दिया गया था तो यहाँ पर ब्रह्मगाँठ के माध्यम से यह संकेत दिया जाता है कि ब्रह्मचारी इन त्रिगुणमयी माया से निकल कर ब्रह्म-शक्ति से अपना साँठ-गाँठ जोड़ लिया है यानी अब यह शरीरमय अथवा मायामय नहीं रहा बल्कि ब्रह्ममय हो गया है । यह ब्रह्म-शक्ति से पुनः गाँठ जोड़ लिया।

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! ब्रह्मचारी को उसके हाथ में कपास का दण्ड दिया जाता है तो यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि कपास का ही दण्ड (डण्डा) क्यों दिया जाता है ? क्यों नहीं किसी और ही चीज का दिया जाता है। इसके समाधान में यह उत्तर होगा कि कपास निरस का प्रतीक होता है और ब्रह्मचारी भी निरस ही होता है । पुनः कपास में विस्तृत मात्रा में गुण होता है, उसी प्रकार से ब्रह्मचारी भी ब्रह्म-शक्ति से युक्त होने-रहने के कारण विस्तृत क्षेत्र में उसकी ब्रह्ममय सत्ता-शक्ति रूप क्षमता कार्य करने लगती है । जिस प्रकार कपास ही है, जो समस्त मानव के तन ढकने का कार्य करता है, ठीक वैसा ही ब्रह्मचारी ही माया जाल में फँसकर अधःपतन को प्राप्त मानव को माया जाल काट करके उसको उससे मुक्त कराने का अथक प्रयास करता रहता है । यही कारण है कि ब्रह्मचारी को निरसता एवं गुणवत्ता के प्रतीक रूप कपास का ही दण्ड (डण्डा) दिया जाता है । अब बात आयी कि ब्रह्मचारी को दण्ड (डण्डा) दिया ही क्यों जाता है ? तो ब्रह्मचारी को दण्ड देने का भाव यह है कि मायावी जन उस दण्ड को देखकर ही जान-समझ लें कि ब्रह्मचारी अब सामान्य बालक नहीं है, अपितु ब्रह्म-शक्ति से युक्त ब्रह्ममय है । अब कोई फँसाने के लिये उसके पास नहीं जा सकता है। यदि उसके पास फँसाने हेतु मायावी कुछ भी और कोई भी जायेगा तो दण्ड का भागी होगा और ब्रह्मचारी उस दण्ड के लिये दोषी न होगा क्योंकि दण्ड धारण कर वह पहले ही चेता दे रहा है कि मेरे पास दण्ड भी है।

बालक 'शुद्र' से 'द्विज' कैसे बना ?

सद्भावी सत्यान्वेषी बन्धुओं ! उपनयन संस्कार बालक के दूसरे जन्म की एक साँस्कारिक (संस्कृति प्रधान) पद्धति है, जिसमें साँस्कृतिक विधानों से बालक का शुद्र से समाप्त कराकर पुनः दूसरा साँस्कारिक जन्म कराया जाता है । प्रायः सभी ब्राह्मणों को ही यह बात मालूम होती है कि उपनयन संस्कार के पूर्व वह बालक शुद्रवत् होता है तथा उपनयन संस्कार के बाद वही बालक 'द्विज' बन या हो जाता है । उपनयन संस्कार बालक के दूसरे जन्म की एक सांस्कृतिक पद्धति (साँस्कारिक विधान) है । आइए पाठक बन्धुओं अब 'शुद्र से द्विज कैसे ?' पर गहनता पूर्वक पठन-पाठन, मनन-चिन्तन करते हुए यथार्थ स्थिति जानी समझी जाय ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं । ब्रह्मांश ही सर्व प्रथम तो प्रभु के प्रेरणा से तत्पश्चात् अपने प्रारब्ध कर्मों के अनुसार अन्य योनियों से भुगतते हुये पुण्य पुन्जों के एकत्रित होने तथा परमप्रभु की अहेतुकी कृपा के कारण ब्रह्मांश जीव रूप में पिता के अन्तर्गत इच्छा रूप में प्रविष्ट होकर शुक्र का रूप लेता हुआ वीर्य के सहारे माता के गर्भ में प्रवेश पाता है, जहाँ पर विकास के सिद्धान्त से वह शरीर का रूप धारण करता है । तत्पश्चात् जीव की चेतनता एवं क्रियाशीलता हेतु पुनः गर्भस्थ शिशु के अन्तर्गत रहने वाले जीव से ब्रह्मनाल (नार-पुरइन) के माध्यम से सम्पर्क कायम रखते हुये गर्भस्थ शिशु की रक्षा-व्यवस्था (लालन-पालन) करता है । प्रारब्ध कर्म के अनुसार गर्भस्थ शिशु गर्भ से बाहर आता है । यहाँ पर एक बात जान लेने की विशेष आवश्यकता महसूस हो रही है । हो सकता है कि यह बात पीछे कही जा चुकी हो परन्तु फिर भी यहाँ पर आवश्यकतानुसार संक्षिप्ततः कही जा रही है, शिशु जब तक गर्भ में रहता है, तब तक उसकी शरीरिक दोनों आँखें बन्द रहती है और अन्दर ही अन्दर दृष्टि ऊर्ध्वमुखी रूप में आज्ञा-चक्र स्थित दिव्य दृष्टि से युक्त रहते हुये सदा ही अपने असल अविनाशी दिव्य

पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति रूप दिव्य ज्योति का साक्षात्कार करता रहता है। इसके साथ ही शिशु की जिह्वा भी मुख में न रह कर ऊर्ध्वमुखी रूप में ही जिह्वा मूल से ही ऊपर कण्ठ कूप में ब्रह्म-शक्ति के तरफ से झरते हुये अमृत का पान करती रहती है जिससे कि गर्भस्त शिशु को अन्न-जल की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि 'अमृत का पान करता रहता है जिससे कि गर्भस्थ शिशु को अन्न-जल की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि 'अमृत पान' से क्षुधा-तृष्णा (भूख-प्यास) दोनों ही समाप्त रहती है जहाँ तक कमजोरी की बात है, तो जिसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्म-शक्ति से ही हो, उसके कमजोरी-मजबूती की बात ही अपनी मूर्खता है। पुनः इसके साथ ही गर्भस्थ शिशु के कान भी 'जावड़' से बन्द रहते हैं और शिशुस्थ जीव ब्रह्म-शक्ति के यहाँ हो रहे दिव्य ध्वनियों को सदा ही सुनता रहता है जिसमें आनन्द विभोर रहता था। पुनः उपरोक्त तीनों बातों के साथ ही चौथी और महत्त्व की दृष्टि में सबसे पहली बात भी है कि गर्भस्थ शिशु का जीव ब्रह्म-शक्ति से सदा ही (अनवरत) दरश-परश यानी मेल-मिलाप में ही रहता था, जिससे कि उसकी अखण्ड वृत्ति जीव-आत्मा (ब्रह्म) के मेल-मिलाप की बनी रहती थी, जिसको सूत्रवत् सोऽहँ-हँ्सो वृत्ति से जाना जाता है।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! गर्भस्थ शिशु गर्भ में ब्रह्मनाल (नार-पुरइन) के माध्यम से ब्रह्म-शक्ति से युक्त होने के कारण पूर्वोक्त चारों विधानों से युक्त था और पैदा होते समय तक भी ब्रह्ममय वृत्ति में ही था और तब तक रहता है जब तक कि शिशु का ब्रह्मनाल (नार-पुरइन) काटकर-कटवाकर नाल रहित नहीं कर-करा दिया जाता है। अब यहाँ पर बात थोड़ा विशेष सूझ-बूझ की है कि प्रसव पीड़ा जब स्त्री को होने लगती है तो उसको सन्तोष, मन-बहलाव तथा सेवा हेतु कुछ (दो-चार-पांच) अन्य स्त्रियां घर-पड़ोस की भी रहती हैं परन्तु आश्चर्य की बात यह देखें कि प्रसूति-गृह (सऊरि घर) तब तक अपवित्र या अछूत नहीं रहता है, जब तक कि चमईन (प्रसूति सेविका) आ नहीं जाती हो। भले ही शिशु को पैदा हुये आधा-एक घण्टा ही क्यों न बीत गया हो। यहाँ पर एक आश्चर्य की बात यह भी होती है कि घर-पड़ोस की कोई औरतें नार-पुरइन नहीं काटती हैं, बल्कि नार-पुरईन (ब्रह्मनाल) काटने हेतु समाज के सबसे निम्न स्तर की स्त्री यानी चमईन को ही बुलाया जाता है ! आखिर क्यों ? घर-पड़ोसन के ही अच्छे ऊँचे

श्रेणी के औरतों से ही क्यों नहीं कटवाया जाता है ? यदि पूछा जाय तो प्रायः ठीक-ठीक उत्तर मिलना कठिन हो जायेगा, क्योंकि इसका जवाब अति भयानक हो, यदि चमईन भी असलियत जान-समझ जाय तो शायद वह भी नार-पुरइन को काटने वाला कार्य बन्द कर सकती है । इसीलिये ऋषि-महर्षियों ने जिन्होंने यह विधान लागू किया-कराया, अति गोपनीयता बरता । इस प्रकार गोपनीयता बर्तते-बर्तते समाज में यह जानकारी लुप्त प्रायः ही हो गयी । यहाँ पर इस विषय को संक्षिप्त में ही कहा जा रहा है क्योंकि इसी पर एक विस्तृत अध्याय है । नार-पुरइन (ब्रह्म- नाल) को काटने का अर्थ है शिशुस्थ जीव के ब्रह्ममय सम्बन्ध को काटना । अब थोड़ा सोचें कि यह कार्य कि शिशुस्थ ब्रह्ममय जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध काटकर शरीरमय बनाना, तो वैसा ही तुच्छ कार्य है जैसा कि किसी राजा के बालक को भिखारी फँसाकर उसका राजा से सम्बन्ध हटाकर अपने साथ जोड़ कर उस बालक से भीख मँगवाकर अपना जीवन वसर करता हो । बल्कि इससे भी घृणित कार्य है, नार पुरईन काटना, क्योंकि इस राजा के बालक का एक ही जन्म खराब होता है परन्तु उस जीव का तो लाखों-करोड़ों जन्म ही फँस-फँसा कर चौपट कर-करा दिया जाता है। इस प्रकार ब्रह्म से सम्बन्ध विच्छेद करना-कराना एक घोर घृणित कार्य ही है। इसीलिये समाज के निम्नतम श्रेणी की औरत जिसे कुछ भी मालूम नहीं, उसी चमईन से कटवाया जाता है जिसका कुप्रभाव भी सभी लोगों को जाने-अनजाने में भुगतना ही पड़ता है। वह क्या कि जब नार-पुरईन काटा जाता है तो उस पाप कर्म से सभी ही अछूत हो जाते हैं जिस शिशु का कटता है वह भी अछूत, जो काटती है, वह भी अछूत, शिशु की माँ भी अछूत, वह कोठरी यानी प्रसूति-गृह भी अछूत, काटने वाली औरत यानी चमईन जिस रास्ते से गुजरती है, वह रास्ता भी अछूत, एक तो निम्न परिवार की रहती है, फिर उसके परिवार वाले भी उसे अछूत ही मानते हैं। मजबूरी नहीं हो, तो सात-दिन क्या जिन्दगी भर ही लोग अछूत रहते । यहाँ पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो जाती । इसी बात के चलते नाना उपक्रम करके अछूत को प्रायः एक सप्ताह के बाद अछूतपन मिटा दिया जाता है फिर भी बालक उपनयन संस्कार तक शुद्रवत् ही व्यवहरित होता है ।

सद्भावी सत्यान्वेषी पाठक बन्धुओं ! गर्भस्थ शिशु जिन चार विधानों से

युक्त जिसके कि नार-पुरईन (ब्रह्मनाल) कटवाकर क्रमशः चारों विधानों से विछुड़ाकर नकली चार विधानों--दिव्य ज्योति के स्थान पर दीप-ज्योति, अमृतपान के स्थान पर मधुपान, अनहद नाद (दिव्य ध्वनियों) के स्थान पर फूल की थाली की ध्वनियाँ तथा सोऽहँ-हँ्सो के नाम पर सोहर व शारीरिक माता-पिता आदि के नाम-रूपों को जना-सुना-दिखा-करा कर असल से भटकाकर नकल में फँसाकर जकड़ दिया जाता है । अविनाशी दिव्य पिता-माता रूप ब्रह्म-शक्ति से विछुड़ा एवं भटकाकर विनाशशील शारीरिक माता-पिता, भाई-बहन आदि शरीरों में फँसा दिया जाता है । ऋषि-आश्रमों की व्यवस्था जब तक थी तब तक तो उपनयन संस्कार सही रूप में होता था । सही उपनयन संस्कार के अन्तर्गत ऋषि-आचार्य गुरु होते थे, जो ब्रह्म ज्ञान आत्मज्ञानी होते थे और वे उन्हीं चारों विधानों को पुनः प्रारम्भ कर करा देते थे । योग-साधना अथवा अध्यात्म-साधना से पुनः बालक के अन्तर्गत जीव को पुनः ऊर्ध्वमुखी दृष्टि के माध्यम से ध्यान में दिव्य ज्योति का साक्षात्कार कराते हुये, अमृतपान, अनहद नाद तथा अखण्ड वृत्ति रूप सोऽहँ-हँ्सो का अजपा जप आदि कराकर शुद्रवत् शरीरमय बालक के पुनः शरीरमय रूप (भाव) को समाप्त कराते हुये जीवात्मा रूप में पहुँचा कर आत्मा (ब्रह्म) से ध्यान के द्वारा व अजपा-जप से पुनः साक्षात्कार कराते हुये मेल-मिलाप (जीव का आत्मा से) करा कर आत्मामय रूप दूसरा जन्म यानी द्विज बना देते हैं। तब उस ब्रह्ममय 'द्विज' बालक को ब्रह्मचारी का भेष देकर वेद-शास्त्रों के अध्ययन मनन-चिन्तन करते हुये विप्र, योग-साधना अथवा अध्यात्म के भरपूर अनुभूतिपरक जानकारी देने के पश्चात् विप्र से ब्राह्मण यानी अध्यात्मवेत्ता अथवा ब्रह्मवेत्ता स्तर (श्रेणी) तक पहुँचाकर समाज कल्याण हेतु समाज में स्वच्छ विचरण हेतु भेज देते थे तथा वे गुरुआज्ञा को सहर्ष पूरा करते थे । उन ऋषि-आचार्य गुरु द्वारा उपनयन संस्कार में भिक्षाटन के समय ब्रह्मचारी को जो अनुभूति हुई थी, वह अवश्य ही पठनीय एवं सूझ-बूझ के साथ विचारणीय बात है । हम तो आप पाठक बन्धुओं से यहाँ पर साग्रह निवेदन करेंगे, यहाँ पर रुककर एक बार फिर उपनयन संस्कार वाले पहले शीर्षक को पढ़कर तब आगे बढ़ेंगे तो बड़ा ही अच्छा होगा क्योंकि ब्रह्मचारी की भिक्षाटन के समय की अनुभूति हम बार-बार दोहरा रहे हैं कि कल्याणप्रद है । उसमें देखना है कि ब्रह्मचारी का भाव शारीरिक माता-पिता आदि

पर कैसा हो जा रहा है तथा गुरुदेव के प्रति कैसा भाव हो जा रहा है । एक बार और उसे अवश्य देखें।

सद्भावी बन्धुओं ! आजकल उपनयन संस्कार एक संस्कार न रहकर मात्र परम्परागत विधानों एवं परम्पराओं का पालन भर हो रहा है क्योंकि उपनयन संस्कार को कराने वाला आचार्य खुद ब्रह्म ज्ञानी तो नहीं है बल्कि वैसा शरीरमय वह भी है । फिर भी उपनयन संस्कार चूँकि ब्रह्म ज्ञान देने-लेने यानी ब्रह्म से सम्बन्ध स्थापित करने-कराने वाली पद्धति में इतना तो है ही कि सम्बन्ध कटवाया जाता है चमईन से तथा झूठा ही सही परन्तु जोड़ने हेतु आचार्य गुरु-पंडित बुलाया जाता है दोनों के अन्तर को सोंचे-समझें तो समझ में आ जायेगा कि काटने पर क्या महत्त्व मिलता है और झूठे रूप में भी जोड़ने को क्या महत्त्व दिया जाता है ।

ब्रह्मचारियों हेतु उत्तम निर्देश

सद्भावी ब्रह्मचारियों ! आप बन्धुओं से निवेदन पूर्वक यह बताना चाहूँगा कि आप को भी अभी बहुत सावधानी बर्तने की बात है। आप को यह कदापि नहीं सोचना चाहिये कि 'मैं' जो कुछ पा गया हूँ या जो कुछ द्विज या ब्रह्मचारी बन गया हूँ यही अन्तिम जानकारी तथा अन्तिम पद है। ब्रह्मचारियों को ब्रह्ममय वृत्ति और आचरण में रहते हुये अभी परमब्रह्म की प्राप्ति और मुक्ति-अमरता के बोध को प्राप्त करना अभी आप को भी बाकी यानी शेष है। यहाँ पर यह बताने की विशेष आवश्यकता महसूस हुई है क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि ब्रह्ममय वृत्ति या आत्मामय वृत्ति या ईश्वरमय वृत्ति वालों को एक जबरदस्त भ्रम एवं अहंकार वृत्ति उनके अन्दर कार्य करना शुरु कर देता है जिससे हमेशा ही सावधान रहना चाहिये क्योंकि इस जबरदस्त भ्रम एवं अहंकार से बचे वगैर तथा ब्रह्ममय से भी आगे बढ़कर परमब्रह्ममय या ईश्वरमय से भी आगे बढ़कर परमेश्वरमय या आत्मामय से आगे बढ़कर परमात्मामय हुए वगैर न तो आप को यथार्थतः मुक्ति का ही बोध प्राप्त हो सकता है और न तो अमरता का ही, जबकि जीव की अन्तिम गति मुक्ति और अमरता का बोध ही होता है । आइये, अब आप बन्धुओं को उस जबरदस्त भ्रम एवं अहंकार का पर्दाफास करते हुये समझा-बुझा दूँ ताकि उससे बचने हेतु आप पहले से ही आगाह रहेंगे ताकि आप पर उसका कुप्रभाव नहीं होने पाये ।

वह जबरदस्त भ्रम एवं अहंकार है ब्रह्म को ही परमब्रह्म अथवा ईश्वर को ही परमेश्वर अथवा आत्मा को ही परमात्मा अथवा हंस को ही परमहंस अथवा नूर को ही अल्लाहतआला अथवा सोल को ही गॉड अथवा ब्रह्मानन्द को ही परमानन्द अथवा चिदानन्द को ही सच्चिदानन्द अथवा सोऽहँ-हँ्सो को अखण्ड वृत्ति (अजपा जप) व दिव्य ज्योति दर्शन को चारों (अजपा जप, ध्यान, अनहद, और खेंचरी) आदि को साधनात्मक योग-साधना को ही परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्दरूप भगतत्तत्त्वम् से सम्बन्धित तत्त्वज्ञान या भगवद् ज्ञान या सत्य ज्ञान पद्धति अथवा ज्योति दर्शन व जीवात्मा (हँ्सो) के अनुभूति को ही मुक्ति और अमरता का बोध मान लेना ही वह जबरदस्त भ्रम एवं अहंकार है जो आत्मा में ही भटकाकर परमात्मा से या ब्रह्म में ही लटकाकर परमब्रह्म से या ईश्वर में ही लटकाकर परमेश्वर से या योग-साधना रूप अध्यात्म में ही लटकाकर भगवद् ज्ञान रूप तत्त्वज्ञान पद्धति से बंचित कर करा देता है । पुनः योगी या आध्यात्मिक गुरु को ही तात्त्विक सद्गुरु तथा योगी या आध्यात्मिक महापुरुष को तात्त्विक या तत्त्वज्ञानदाता परमपुरुष रूप अवतारी, आत्मानुभूति को ही अद्वैतत्त्व बोध या ज्योति दर्शन मात्र को ही मुक्ति और अमरता कदापि नहीं मानना चाहिये । ये दोनों ही पृथक्-पृथक् दो बातें हैं । अतः गौर करके आगे बढ़ने का यत्न (कोशिश) करें । भगवान् आप को सद्बुद्धि दें । हम तो परमप्रभु की कृपा से आप को ये निर्देश दे रहे हैं । शेष आप जानें और आपका कार्य जानें । शेष सब भगवद् कृपा

तत्त्वज्ञान 'विद्यातत्त्वम्' का ही पर्याय है । तत्त्वज्ञान या विद्यातत्त्वम् न तो कर्मकाण्ड ही होता है और न योग-साधना वाला अध्यात्म ही । बल्कि दोनों का ही उत्पत्तिकर्त्ता, संचालनकर्त्ता तथा विलय रूप नियन्त्रण-कर्त्ता के साथ ही साथ सभी के कमियों का पूरक होता है, चाहे वह किसी भी प्रकार की कमी क्यों न हो । यथार्थ बात यह है कि विद्यातत्त्वम् या तत्त्वज्ञान किसी का भी विरोधी नहीं होता है, बल्कि सबका सहयोगी रूप संरक्षक और बिना किसी प्रतिकार के ही पूरक होता है । फिर भी आश्चर्य की बात तो यह है कि सभी ही अपना शोषक समझते हैं । कर्मकाण्डी कहते हैं कि यह आध्यात्मिक है और आध्यात्मिक कहते हैं कि यह कर्मकाण्डी है । परन्तु जो भी सम्पर्क में आता है सर्वोच्चता, सर्वश्रेष्ठता एवं सर्वोत्तमता को स्वीकार करते हैं । जब कोई व्यक्ति किसी तत्त्वज्ञानी या तत्त्वज्ञानी

के इशारे पर तत्त्वज्ञानदाता के पास आता है तो चाहिये यह कि वह किसलिये आता है, जिस लिये आता है वह इनके (तत्त्वज्ञान दाता) के पास है कि नहीं ? तो यह देखते हुए भी कि उसके जिज्ञासा वाली बात श्रेष्ठतम् एवं सर्वोत्तम रूप में है फिर भी वह अपने प्रतिकूल वाली बात भी देखने लगता है । जिससे वह भ्रमित होकर भटक जाता है। जबकि उसे मात्र अपनी जिज्ञासा वाली बात मात्र से मतलब रखना चाहिये अन्य की नहीं । क्योंकि तत्त्वज्ञान या विद्यातत्त्वम् कोई व्यक्ति या वस्तु या शरीर और सम्पत्ति सम्बन्धी बात तो है नहीं और न तो जीवात्मा वाला योग-साधना वाला अध्यात्म की ही बात है । अपितु यह तो परमतत्त्वम् रूप आत्मतत्त्वम् शब्द रूप भगवत्तत्त्वम् रूप परमब्रह्म या परमात्मा-खुदा-गॉड की एकमात्र यथार्थ जानकारी, दर्शन तथा बात-चीत करते हुए पहचान करने-कराने वाला तत्त्वज्ञान पद्धति है । जिसके अन्तर्गत संसार, शरीर, जीव, जीवात्मा, आत्मा आदि की भी यथार्थ उत्पत्ति, संचालन तथा विलय से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी सैद्धान्तिक, प्रायौगिक तथा व्यावहारिक रूप से भी अनायास ही मिल जाती है। चूँकि यह साँसारिक और आध्यात्मिक का विधान या पद्धति तो होता नहीं कि एकांगी रहे ताकि जो आवे मात्र वही या उसकी ही बात दिखलायी दे । यह तो अवतारी वाला पूर्ण या पूर्णांग-विधान या पद्धति है जिसमें सृष्टि की सारी बातें एवं क्रियाएँ भी दिखायी देना ही वास्तविक सत्यता या यथार्थतः परमसत्य की पहचान कराने वाला होता है । इस प्रकार अवतारी वाली पद्धति जो विद्यातत्त्वम् या तत्त्वज्ञान पद्धति है इसलिये इसमें क्या-क्या है ? क्या दोष है और क्या गुण है ? ये सब कुछ भी इस पद्धति में देखी जाती है । इसमें मात्र परमप्रभु या परमात्मा की भक्ति-सेवा किससे और कैसे हो जिससे परमात्मा प्रसन्न रहें और अपनी भक्ति-सेवा बनायें रखें, मात्र यही प्रधानता देखने योग्य होता है क्योंकि परमात्मा की भक्ति-सेवा का पद सृष्टि का सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम होता है। इसलिये सर्वतोभावेन परमात्मा वाली अवतारी सत्पुरुष शरीर को आनन्दित एवं प्रसन्नचित्त रखना ही अपना उच्चतम् कर्त्तव्य है । सिद्धान्त भी यही है कि जितना ही ऊँचा पद होता है उस पद पर टिकना या कायम रहना भी उतना ही खतरनाक उत्तरदायी होता है । चूँकि यह परमात्मा का ही विधान या पद्धति है इसलिये सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम होता है । यही यथार्थतः परमसत्य है ।

भजन

छोड़ो माया भजो भगवान् को

छोड़ो माया भजो भगवान् को, जिन्दगी का ठिकाना नहीं है ।। टेक ।।

भाई बन्धु कुटुम्ब सुत दारा, कोई हरगिज न होगा तुम्हारा।
ये मानव का तन जो मिला है, व्यर्थ में ही गँवाना नहीं है।।
छोड़ो माया........

तेरे जीवन की नइया पुरानी, केवल सद्गुरु खेवइया रे प्राणी ।
जब बनोगे प्रभु के पुजारी, नाव पार लगेगी तुम्हारी ।।
छोड़ो माया.......

ये उन्हीं के हवाले तू कर दो, जिन्दगी का ठिकाना नहीं है ।
छोड़ो माया भजो भगवान् को, जिन्दगी का ठिकाना नहीं है ।।
छोड़ो माया.....

प्रेम से बोलिए-सद्गुरुदेव जी महाराज की ऽ जय ।
प्रेम से बोलिए-परमपिता परमेश्वर की ऽ जय ।
प्रेम से बोलिए आनन्दकन्द लीलाधारी प्रभु सदानन्द मनमोहन भगवान् की ऽ जय ।

परम प्रभु की है ये वाणी . . . . (भजन)

परम प्रभु की है ये वाणी जल्दी ही सतयुग छायेगा ।
सत्पुरुषों का राज्य बनेगा, पापी नहीं बच पायेगा ।।
धर्मयुद्ध का बिगुल बज गया नहीं चलेगी मनमानी ।
धर्मक्षेत्र अब बनेगी धरती, नहीं बचेंगें अभिमानी ।।
सत्य की डोरी जो पकड़ेगा वही यहाँ रह पायेगा.. सत्पुरुषों..
परम प्रभु की है ये वाणी....
असत्य-सत्य के बीच हो रहा, इस धरती पर युद्ध महान ।
प्रभु शरण में आना होगा, जो चाहो अपना कल्याण ।।
पापियों कान खोलकर सुनलो-पाप छोड़कर धरम पकड़ लो
तभी तू रहने पायेगा.... सत्पुरुषों...
परम प्रभु की है ये वाणी....
कलयुग की रात गयी सतयुग शुरूआत भयो
भक्तों के भाग्य अब जागे ही जागे
सोऽहँ कोई ज्ञान नहीं, ढोंगी भगवान् नहीं
पापियों के संग पाप जागे ही जागे रे भाई....
कहता हूँ मान लो सत्य को जान लो
श्री सदानन्द प्रभु जी से गीतावाला ज्ञान लो ।
कण-कण में भगवान् नहीं, घट-घट में भगवान् नहीं
प्रभु सदानन्द जी से जानो रे समझो रे भाई....
अब भी अगर नहीं जानेगा तो पीछे पछतायेगा ।
सत्पुरुषों का राज्य बनेगा पापी नहीं बच पायेगा ।
परम प्रभु की है ये वाणी जल्दी ही सतयुग छायेगा ।
सत्पुरुषों का राज्य बनेगा, पापी नहीं बच पायेगा ।।

प्रेम से बोलिये -- श्री सद्गुरु देव महाराज की जय ।
आनन्दकन्द लीलाधारी प्रभु सदानन्द जी मनमोहन भगवान् की जय ।

धर्म-ग्रन्थों की सूची

असत्य-अधर्म विनाशक तथा सत्य-धर्म संस्थापक एवं संरक्षक

परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस द्वारा

(संस्थापक, संचालक एव संरक्षक-- सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्)

द्वारा विरचित पूरे भू-मण्डल का एकमात्र सबसे प्राचीन, सम्पूर्ण व अनोखे 'ज्ञान' वाली पुष्पिकाओं की सूची इस प्रकार है--

(१) स्वप्न और जागरण पर सदानन्द 'मत' -- (पुष्पिका-१)
(वर्तमान में इस प्रकाशन को बन्द कर दिया गया है ।)

(२) वास्तविक सत्य पर सदानन्द 'मत' -- (पुष्पिका-२)

(३) ज्ञान-क्रान्ति का उद्घोष -- (पुष्पिका-३)

(४) ऐसा ही हो तो मैं कहूँ क्या, आप न अपनाएँ तो मैं करूँ क्या?-(पुष्पिका-४)

(५) धर्म रक्षक बनो महान--भक्तो बनो अर्जुन-हनुमान --(पुष्पिका-५)

(६) शीघ्रता से अपनाएँ अन्यथा पछताएँ -- (पुष्पिका-६)

(७) असल भगवदावतारी की पहचान कैसे ? -- (पुष्पिका-७)

(८) श्रीराम जन्म-भूमि समस्या और उसका सार्वभौमिक समाधान--(पुष्पिका-८)

(९) सबकी वास्तविकता -- (पुष्पिका-९)

(१०) What Should I Say if it is True -- (पुष्पिका-१०)

(११) सफल जीवन हेतु भगवद् संदेश -- (पुष्पिका-११)

(१२) चुनौती भरा सत् सन्देश' -- (पुष्पिका-१२)

(१३) सच्चा धर्मोपदेशक कैसे पहचानें ?' (पुष्पिका-१३)

(१४) विद्यातत्त्वम् पद्धति" -- (पुष्पिका-१४)

(१५) प्रेम भरा प्रस्ताव'--(पुष्पिका-१५)

(१६) आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड मिटाने जीव-ईश्वर-परमेश्वर-दिखाने --(पुष्पिका-१६)

(१७) मानव जीवन की सफलता भगवद् प्राप्ति में -- (पुष्पिका-१७)

(१८) कैसे हुई इस स्थूल जगत् की रचना -- (पुष्पिका-१८)

(१९) अध्यात्म और तत्त्वज्ञान -- (पुष्पिका-१९)

(२०) सन्त ज्ञानेश्वर जी का धर्माधिकारियों से वार्ता -- (पुष्पिका-२०)

(२१) शंका-समाधान (भाग-१), (भाग-२) -- (पुष्पिका-२१)

(२२) किसे कहते हैं धर्म ? -- (पुष्पिका-२२)

(२३) तत्त्वविवेचना के आधार पर महापुरुषों की कथायें -- (पुष्पिका-२३)

(२४) कैसा होता है 'सत्संग' ? और किसे कहते हैं 'सन्त' ? -- (पुष्पिका-२४)

(२५) तत्त्व विवेचना पर गौतम बुद्ध-यीशु-मुहम्मद साहब -- (पुष्पिका-२५)

(२६) सत्पुरुषत्त्व हेतु उत्प्रेरक कहानियाँ -- (पुष्पिका-२६)

(२७) अध्यात्म का रहस्य तत्त्वज्ञान में -- (पुष्पिका-२७)

(२८) परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर जी के तत्त्व विवेचना पर गृहस्थ जीवन-- (पुष्पिका-२८)

(२९) भजन प्रवाहिका

(३०) मेरी धर्म यात्रा (भगवान् सदानन्द जी की सत्य लीला)

टिप्पणी :- (१) सत्यान्वेषी बन्धुजन ग्रन्थों को प्राप्त करने के लिए अपने निकटस्थ आश्रमों या केन्द्रों, जिनके पते अग्रलिखित हैं, से सम्पर्क करें अथवा 'वितरण-अधिकारी, 'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्', 'परमतत्त्वम् धाम आश्रम', बी-६, लिबर्टी कॉलोनी, सर्वोदय नगर, लखनऊ-१६, दूरभाषः०५२२-२३४६६१३ से पत्र-व्यवहार करें । (२) आगामी ग्रन्थों की जानकारी हेतु 'वितरण अधिकारी' से ही पत्र-व्यवहार करें।

परमपूज्य सन्त ज्ञानेश्वर
स्वामी सदानन्द जी परमहंस द्वारा

संस्थापित, संचालित एव संरक्षित-- 'सदानन्द तत्त्वज्ञान परिषद्' के प्रमुख आश्रमों/केन्द्रों के पते इस प्रकार हैं---

(१) 'सत्पुरुष धाम आश्रम', बँगरा (बथना कुटी), नरहवाँ शुक्ल, कुचाय कोट, जनपद-गोपालगंज (बिहार) पिन-८४१ ५०१ (भारत)

(२) 'अमरपुरुष धाम आश्रम', भगवत् परसा, बथुवा बाजार, गोपालगंज (बिहार) पिन-८४१ ४२५ (भारत) (प्रस्तावित)

(३) 'श्रीहरि द्वार आश्रम', रानीपुर मोड़, रेलवे क्रासिंग से उत्तर समीप ही, हरिद्वार पिन- २४६ ४०१ (भारत)

(४) 'भगवद् धाम आश्रम', महनगा-सिद्धार्थ नगर, (उ० प्र०) पिन-२७२ २०३ (भारत)

(५) 'परमपुरुष धाम आश्रम'(प्रस्तावित) ठकुरापुर-शिवपति नगर, सिद्धार्थ नगर (उ०प्र०) पिन-२७२ २०६ (भारत)

(६) 'परम धाम आश्रम', महुअर-(किरावली) आगरा (उ० प्र०) पिन-२८३ १२२ (भारत)

(७) 'मोक्षदाता धाम आश्रम', घाटमपुर, (रोहनिया से ३ किमी० उत्तर-पश्चिम), वाराणसी (उ०प्र०) पिन-२२१ १०७

(८) 'पुरुषोत्तम धाम आश्रम', पुरुषोत्तम नगर, सिद्धौर-बाराबंकी (उ० प्र०) पिन-२२५ ४१३ (भारत)

(९) 'पुराण पुरुष धाम आश्रम, गीता मानस गृह अटरिया, लालगांव, जिला रीवा, म०प्र०

(१०) 'परमभाव धाम आश्रम', मझवारा-मायंग, सुल्तानपुर (उ० प्र०) पिन-२२८ १२१

(११) 'परमतत्त्वम् धाम आश्रम', बी-६, लिबर्टी कॉलोनी, सर्वोदय नगर, लखनऊ-२२६ ०१६ दूरभाष :०५२२-२३४६६१३

(१२) 'सनातन पुरुष धाम आश्रम', ललुआपुर-रुदौली, फैजाबाद (उ०प्र०) पिन-२२५ ४११ (भारत)

(१३) 'मुक्तिदाता धाम आश्रम', जल-श्रोत बगिया, किटहा, जनपद-सतना (म०प्र०)पिन-४८५ २२१

(१४) 'तत्त्वज्ञानदाता धाम आश्रम', सी-१७, न्यू आचार्य कृपलानी मार्ग, आदर्श नगर, दिल्ली-११० ०३३

(१५) 'कल्कि अवतार भगवान् सदानन्द धाम आश्रम', ग्राम सभा - डिम्हौरा, जिला-लखीमपुर, (भारत) मो० :- ९९८४५८७९७४

(१६) 'प्रभु सदानन्द धाम आश्रम', बहादुरगढ़ (कनौदा), हरियाणा (भारत) दूरभाष:- ०९३५४९१३९८४, ०९३११९७०४२६

(१७) 'मुक्ति-अमरतादाता धाम आश्रम', जलालपुर रोड़, राठ, जिला-हमीरपुर (उ०प्र०) दूरभाष: ९४५०८३५७८२

(१८) भक्तवत्सल भगवान् सदानन्द धाम आश्रम', मोहल्ला - गंगोत्री नगर, नौरंगाबाद, जिला-लखीमपुर,खीरी (उ०प्र०) दूरभाष :- ०८६०४०९२६६३, ०८७९९४५१४६४

(१९) विराट पुरुष धाम आश्रम, नयां बाजार, रंगेली रोड, सीसबनी अहंदा, मोरंग कोशी अंचल, नेपाल

(२०) 'सदानन्द भगवद् ज्ञान प्रचार परिषद्', बुढ़ानीलकण्ठ गा०वि०स०, वडा नं०-३, चपली गाउँ, काठमाण्डौं, नेपाल

(२१) 'परमप्रभु धाम आश्रम', वैरवा, त्रिकोल - ८, जिला-सप्तरी, सगरमाथा अञ्चल नेपाल

नोटः- इस संस्था के नाम पर किसी को भी किसी भी प्रकार का चन्दा-दान- भेंट-चढ़ावा आदि कुछ भी कदापि न दें ।

विशेष नोटः- कोई भी भूखा-दूखा-अनाथ व्यक्ति चाहे वह जिस किसी भी लिंग-जाति-वर्ग-सम्प्रदाय का क्यों न हो, भेद-भाव रहित रूप में 'पुरुषोत्तम धाम आश्रम' में सपरिवार शरण पा सकता है श्रम करना अनिवार्य नहीं, मगर ईमान-संयम अनिवार्य है । सभी बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा भी अनिवार्य हैं । खाना-कपड़ा-कापी-किताब-दवा आदि सहित प्रायः समुचित सुविधाओं से युक्त आवासीय व्यवस्था भी उपलब्ध है ।

लोभ, मोह, अहंकार, ममता, मोह, माया, वासना आदि समस्त आपदाओं की साक्षात् मूर्ति रूप औरत को पाकर कोई चाहे कि स्थिर, शान्ति, चैन से तथा आराम-विश्राम से, शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर सकता है, तो यह कदापि सम्भव नहीं है । क्योंकि यह जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ममता, माया वासना आदि समस्त अवगुणों की खान रूप स्त्री आपको अमन-चैन तथा शान्ति और आनन्द की अनुभूति कैसे पाने दे सकती है ? कदापि आपको चैन नहीं मिलेगा ।

परमार्थी समाज हेतु स्वार्थ का त्याग अनिवार्य है । स्वार्थ ही तो पतन और विनाश का बीज और परिवार ही उसका हरा-भरा वृक्ष होता है । परिवार में स्वार्थ उत्पन्न होता और पलता-फूलता-फरता है । परिवार परमार्थ का घोर विरोधी और शत्रु होता है ।

सच एक है--एक रहेगा

सच एक है - एक रहेगा, शेष सब बकवास है

(१) सच्चा हिन्दू तो वह है जो 'दूषित भावनाओं से हीन हो, अर्थात् जो 'दोष रहित' सत्य प्रधान उन्मुक्त जीवन विधान वाला हो ।"

(२) सच्चा जैनी वह है जिसे 'अरिहंत' की प्राप्ति और 'निर्वाण' का यथार्थतः ज्ञान प्राप्त हो । जो 'सत्य तत्त्व' को जान लिया हो वही जैनी है ।

(३) सच्चा बौद्ध वह है जिसे 'बोधिसत्त्व का सच्चा-सम्यक् बोध' हो ।

(४) सच्चा यहूदी वह है जो 'यहोवा (परमेश्वर)' के प्रति विश्वास और भरोसा रखते हुये 'यहोवा' मात्र के ही आज्ञाओं में रहता-चलता हो, अन्य किसी के नहीं ।

(५) सच्चा ईसाई वह है जो यीशु (जीवन-ज्योति) और यीशु के पिता 'शब्द' (गॉड) (वचन) रूप 'परमेश्वर' के प्रति विश्वास और भरोसा सहित समर्पित और शरणागत हो।

(६) सच्चा मुसलमान वह है जो मुसल्लम ईमान से 'अल्लाहतऽला' अथवा दीन की राह (धर्म-पथ) के प्रति जान-व-माल सहित कुर्बान हेतु सदा ही समर्पित-शरणागत रहे ।

(७) सच्चा सिक्ख वह है जो 'सद्गुरु' से माया और परमेश्वर तथा उनकी कृपा आदि सब कुछ ही पाना-परखना 'सीख (जानकर)' १ॐ कार-सत्सीरी अकाल के प्रति समर्पित-शरणागत रहे ।

अतः सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस का कहना है कि वास्तव में जो सच्चा हिन्दू है, वह ही सच्चा जैनी भी है; जो सच्चा जैनी है, वह ही सच्चा बौद्ध भी है; जो सच्चा बौद्ध है, वह ही सच्चा मुसलमान भी है; जो सच्चा मुसलमान है, वह ही सच्चा सिक्ख भी है; जो सच्चा सिक्ख है, वह ही सच्चा हिन्दू भी हैं; क्योंकि भगवान्-अरिहंत-बोधिसत्त्व-यहोवा-गॉड (परमेश्वर)-अल्लाहतऽला और १ॐकार- सत्श्री अकाल भिन्न-भिन्न और पृथक्-पृथक् नहीं ? बल्कि सब के सब ही एकमेव 'एक' का ही नाम अनेक है। फिर भेद कहाँ और कैसा ? भेद-भाव घोर अज्ञानता मूलक भरम है जिससे भटकाव होता है और यह भटकाव ही सभी दंगा-फसाद, लूट-मार-काट का मूल है । सच्चा होने-रहने हेतु भेदभाव से ऊपर उठें । हम सभी 'एक' ही परमप्रभु के बन्दे या कृपा पात्र हैं । आपस में सभी एक ही परिवार के हैं । आपस में अपनत्त्व लायें । भटकाव से बचें, क्योंकि सच एक है एक रहेगा, शेष सब बकवास है। सच 'एक' अवतरित हुआ है । बकवासों का अब नाश है। सब भगवत् कृपा ।

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी सदानन्द जी परमहंस